



रेल राजभाषा

अंक 146 जुलाई-सितंबर 2026

भारत की पहली हाइड्रोजन ट्रेन
अगली पीढ़ी की ग्रीन
मोबिलिटी



रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) नई दिल्ली

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





निदेशक राजभाषा की कलम से...



प्रिय पाठकों,

भाषा जुनून भी है और जरूरत भी...

महमूद अकरम चेन्नई के एक युवक हैं और वे दुनिया की 46 भाषाओं में धारा प्रवाह बात करते हैं और 400 से अधिक भाषाओं को लिख-पढ़ सकते हैं। फिर भी उन्हें अपनी मातृभाषा तमिल सबसे अधिक प्रिय है। दुनिया में महमूद अकरम जैसे अनेक लोग हुए हैं, जिनके लिए भाषा एक जुनून रही है। कल्पना कीजिए यदि जार्ज ग्रियर्सन ने भाषाओं के अंतःसंबंध का अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया होता तो क्या भाषा-विज्ञान की दुनिया इतनी स्पष्ट हो पाती? ऐसे लोग ही भाषाओं के माध्यम से समाज के इतिहास को जिलाते हैं। संस्कृतियों में जान फूँकते हैं। मानव सभ्यताओं एवं जीवन मूल्यों को नए सिरे से व्याख्यायित करते हैं।

मानव-विकास के हर सोपान पर भाषा ने जन आकाँक्षाओं के सभी मुद्दों को सुलझाने का प्रयास किया है। भाषा हमारी आत्मा और मस्तिष्क पर हमेशा हावी रहती है और हमारी संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं अभिव्यक्तियों को प्रभावित करती रहती है और जब वह निज भाषा हो तो फिर क्या कहना? हमारी सारी अभिव्यक्तियाँ सटीक व स्पष्ट हो जाती हैं।

भाषा कभी नखरीली व चंचला है तो कभी शब्दजाल की अबूझ पहेली भी है। कभी निर्बाध मुक्त प्रवाहिनी तो कभी तरंगित भावनाओं का सागर भी होती है। लेकिन वह अपने उसूलों से हमेशा आबद्ध भी रहती है। तभी तो वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी अविच्छिन्न प्रवाह के साथ निरंतर चलती रहती है। इतना ही नहीं भाषा एक ममतामयी माँ की तरह अपनों की सहूलियतों के लिए किसी भी भाषा एवं संस्कृति के शब्दों को अपनाने की क्षमता भी रखती है। वह समय के साथ अपने में नए शब्दों को जोड़ने और अप्रचलित एवं कठिन शब्दों को छोड़ने से परहेज नहीं करती।

जो भाषा नवाचारों को अपनाने में सबसे आगे होती है, वह सभी प्रकार के बंधनों एवं जटिलताओं से मुक्त होकर जमाने के साथ होड़ लगाने में सफल हो जाती है। आज डिजिटल एवं ए आई की दुनिया में भी हिंदी प्रबलता से अपनी पैठ बना रही है। इसमें भी कुछ भाषा-वैज्ञानिकों एवं तकनीकविदों के जुनून का ही कमाल है, जो हमें रोज नए-नए डिजिटल प्लेटफार्म उपलब्ध कराते हुए हमारी वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय रेल भी यही चाहती है कि निज भाषा के माध्यम से समूचा भारत एक सूत्र में बँधे और 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना को साकार करे। इन्हीं अपेक्षाओं के साथ 'रेल राजभाषा' का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है, भारत सरकार की अपेक्षाओं को हमारे पाठक, रचनाकार एवं भाषा-प्रेमी समझेंगे और पत्रिका एवं भाषा के विकास की मुहिम में अपने बहुमूल्य सुझावों एवं मंतव्यों से हमें अवगत कराएंगे।

हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाओं सहित...

संपादक

बी 45^{पृ}

(डॉ. वी. सुगुणा)

निदेशक, राजभाषा, रेलवे बोर्ड

संरक्षक

श्री सतीश कुमार
अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी,
रेलवे बोर्ड

परामर्शदाता

श्री आर. मोहनराजा
महानिदेशक (मानव संसाधन)

मार्गदर्शक

श्री प्रवास पी. पांडे
अपर सदस्य (मानव संसाधन)

सलाहकार

श्रीमती विनीता वर्मा
कार्यपालक निदेशक, स्था. (श्रम कानून)

प्रधान संपादक

डॉ. वी. सुगुणा
निदेशक, राजभाषा

उप संपादक

श्रीमती अंजु गेरा
उप निदेशक, राजभाषा

सह संपादक

श्री अमन शर्मा
सहायक निदेशक
हिंदी (समिति) एवं हिंदी (पत्रिका)

संपादन सहयोग

श्री अखिलेश कुमार
कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी
श्री राजेश रंजन
कनिष्ठ सचिवालय सहायक

पता :-

राजभाषा निदेशालय,
कमरा नं. 301, पत्रिका अनुभाग
कॉफमो कार्यालय परिसर
तिलक ब्रिज, नई दिल्ली-110002
ई-मेल:
patrikahindi@gmail.com

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक/कवि	पृष्ठ
1	मैं भारतीय रेल हूँ.. हिन्दी मेरी धड़कन है	अतुल कुमार	5
2	कृत्रिम मेधा: हिंदी भाषा के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार का सशक्त साधन	विभा कनन	8
3	सज्जनता-एक परम सुखकारी सदगुण	श्यामलाल शर्मा	12
4	काश...	रेणु गुप्ता	13
5	बाउल गान : मानवता का संगीत	संजय प्रसाद	14
6	विवाह : बंधन नहीं, बल्कि जीवन का सशक्त आधार	सुनीता पुराकायस्थ	17
7	संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां		19
8	रेलवे बोर्ड में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 159वीं बैठक की झलकियां		21
9	रेलवे बोर्ड में आयोजित पुस्तक चर्चा कार्यक्रम की झलकियां		22
10	प्रशासनिक कार्यों में हिंदी ई-टूल्स और कृत्रिम मेधा (AI) की भूमिका विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन		23
11	एआई और मशीनी अनुवाद टूल्स के उपयोग के माध्यम से राजभाषा कार्यान्वयन विषय पर कार्यशाला		24
12	पूर्वोत्तर रेलवे मुख्यालय, गोरखपुर में आयोजित अखिल रेल हिंदी निबंध, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन तथा हिंदी वाक् प्रतियोगिता-2025 की झलकियां		25
13	पूर्वोत्तर रेलवे मुख्यालय, गोरखपुर में आयोजित अखिल रेल हिंदी निबंध, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन तथा हिंदी वाक् प्रतियोगिता-2025 के दौरान पुरस्कार वितरण की झलकियां		26
14	हिंदी : वर्तमान स्थिति और आगे की राह	सादिक अंसारी	27
15	हिंदी : दिलों की भाषा बने, तभी होगी सर्वप्रिय	मोहम्मद साबिर अली हसन सिद्दीकी	29
16	क्या चाहिए?	डॉ. प्रदीप कुमार	31
17	देवनागरी के साथ भाषाई भारत-भ्रमण	डॉ. गोपाल	32
18	हिंदी	प्रिंस कुमार	36
19	हरिवंश राय बच्चन : जीवन एवं कृतित्व	अभिषेक कुमार प्रसाद	37
20	जनरल डिब्बे की पाठशाला	अभिषेक कुमार सिंह	40
19	पानी	दीपक कुमार प्रजापत	42



मैं भारतीय रेल हूँ... हिन्दी मेरी धड़कन है

गो धूली की बेला थी। प्लेटफॉर्म पर हल्की-हल्की ठंड थी। लोगों की गहमा गहमी में - कहीं विदाई के आँसू थे, कहीं पुनर्मिलन की मुस्कान। कोई माँ बेटे के माथे पर हाथ फेर रही थी तो कोई पिता बेटी को समझा रहा था, कोई सैनिक अपने छोटे बच्चे को अंतिम बार गले लगा रहा था। तभी मेरी सीटी ने सन्नाटे को चीर दिया और मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ चली।

मैं भारतीय रेल हूँ।

लोग कहते हैं कि मैं यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती हूँ। परंतु सच तो यह है कि मैं केवल लोगों को नहीं, उनके सपनों, रिश्तों, स्मृतियों और भावनाओं को भी अपने साथ लेकर चलती हूँ। मेरी पटरियों पर केवल पहिए नहीं दौड़ते, भारत की आत्मा चलती है।

मेरे डिब्बों में हर दिन एक नया भारत जन्म लेता है। कोई केरल से कश्मीर जा रहा होता है, कोई गुजरात से गुवाहाटी, कोई राजस्थान से रांची। कोई अपनी पहली नौकरी के लिए घर छोड़ रहा होता है, कोई

वर्षों बाद माँ के आँचल की छाँव में लौट रहा होता है। मैं सबकी कहानियाँ सुनती हूँ और बिना कुछ बोले उन्हें अंतर्मान में सहेजती जाती हूँ।

एक दिन मेरी एक बोगी में बड़ा अद्भुत दृश्य था। एक परिवार तमिल बोल रहा था। सामने बैठे बुजुर्ग पंजाबी में बात कर रहे थे। खिड़की के पास पश्चिम बंगाल की एक वृद्धा थीं। ऊपर की बर्थ पर असम का एक छात्र बैठा था। कुछ देर तक सब अपने-अपने संसार में खोए रहे। अचानक वृद्धा ने मुस्कुराकर पूछा-“बेटा, अगला स्टेशन कौन-सा है?”

प्रश्न हिन्दी में था। युवक ने हिन्दी में उत्तर दिया। दोनों मुस्कुराते हुए बातचीत में शामिल हो गए।

तभी तमिलनाडु से आया छोटा बच्चा बोला-“अंकल...



अतुल कुमार

संयुक्त निदेशक,
रेलवे बोर्ड





पानी मिलेगा?" उसकी हिन्दी पूर्ण नहीं थी, लेकिन उसकी आवाज में अपनेपन का अहसास था। कुछ ही मिनटों में पूरा डिब्बा एक परिवार बन चुका था। मैं उन्हें देखकर मुस्कुरा उठी। तभी मुझे लगा कि हिन्दी किसी भाषा की प्रतिद्वंद्वी नहीं है। वह तो वह मुस्कान है, जो अपरिचितों को अपना बना देती है। हिन्दी वह हाथ है, जो गिरते हुए यात्री को सहारा देता है। तभी प्लेटफार्म पर ट्रेन रुकी। एक बालक अपनी माँ से पूछ बैठा-

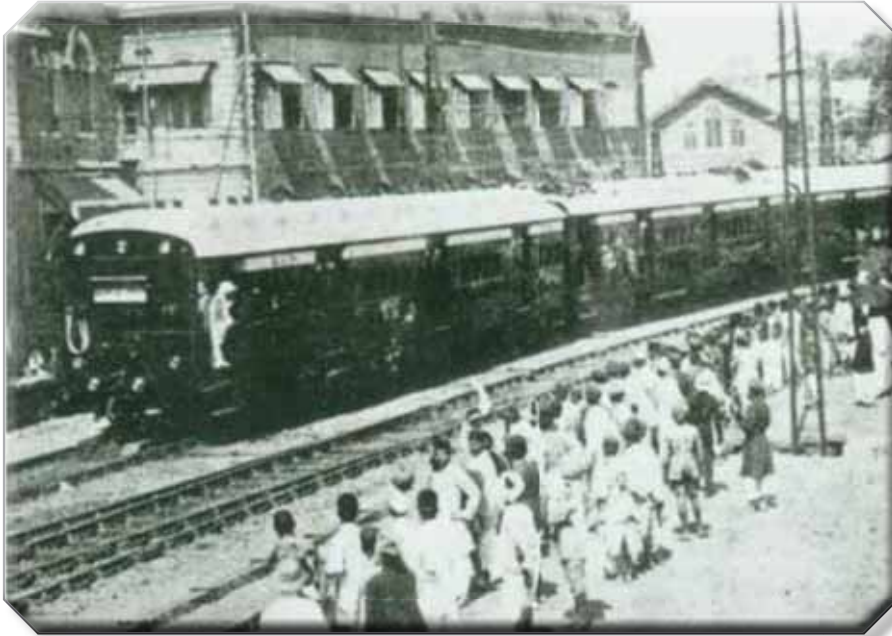
“माँ, स्टेशन का नाम हिन्दी में क्यों लिखा होता है?”

माँ ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा-

“बेटा, क्योंकि यह देश अनेक भाषाओं का सुंदर उपवन है। हर भाषा एक फूल है। भारतीय रेल उन सबको एक माला में पिरोती है और हिन्दी उस माला का वह धागा है, जो सबको प्रेम से बाँधे रखती है।”

उस उत्तर ने मुझे भीतर तक छू लिया। मैं जानती हूँ कि भारत की

प्रत्येक भाषा मेरे लिए समान रूप से सम्माननीय है। तमिल की प्राचीनता, संस्कृत की गरिमा, बांग्ला की मिठास, मराठी का स्वाभिमान, पंजाबी का जोश, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, असमिया, उड़िया, गुजराती, उर्दू, कश्मीरी और देश की हर भाषा मेरी अपनी है। मैं किसी भाषा को दूसरी से बड़ा नहीं मानती। पर जब ये सभी भाषाएँ एक-दूसरे का हाथ थामती हैं, तब हिन्दी एक स्नेहिल सेतु बनकर उनके बीच खड़ी दिखाई देती है।



आज भी जब मेरी सीटी किसी स्टेशन पर गूँजती है, जब उद्घोषणा हिन्दी में सुनाई देती है, जब कोई यात्री किसी अनजान व्यक्ति से कहता है-“भाई साहब, जरा यह सामान पकड़ लीजिए”-तब मुझे लगता है कि मैं केवल यात्रियों को उनके गंतव्य तक नहीं पहुँचा रही, बल्कि भारत की आत्मा को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचा रही हूँ।

यही कारण है कि मैंने अपनी हर यात्रा में हिन्दी को अपने साथ रखा है। मेरे स्टेशनों के नामपट्टों पर वह मुस्कुराती है। मेरी उद्घोषणाओं में वह गूँजती है। टिकटों, सूचना-पट्टों, सुरक्षा संदेशों, आरक्षण चार्टों और अब मेरी वेबसाइटों, मोबाइल ऐप, ई-ऑफिस

तथा डिजिटल सेवाओं में भी वह यात्रियों का हाथ थामे चलती है। समय बदलता गया, तकनीक बदलती गई, पर मेरी इस सहायत्री का स्थान कभी नहीं बदला।

फिर एक दिन मेरे जीवन में ऐसा उत्सव

आया, जिसने मुझे अपनी एक शताब्दी की यात्रा याद दिला दी। दिन था “3 फरवरी 2024”। ठीक सौ वर्ष पहले, “3 फरवरी 1924” को, मुंबई के तत्कालीन विक्टोरिया टर्मिनस से कुर्ला तक भारत की पहली विद्युत रेल चली थी। उस ऐतिहासिक क्षण के सौ वर्ष पूरे होने पर सम्पूर्ण भारतीय रेल परिवार ने रेल विद्युतीकरण के 100 वर्ष का उत्सव मनाया। यशोभूमि कन्वेंशन सेंटर में भव्य समारोह आयोजित किया गया। इस यात्रा को अविस्मरणीय बनाने हेतु



यशोभूमि कन्वेंशन सेंटर में डाक टिकट जारी किये गए।

देश भर में प्रदर्शनियाँ लगीं, विरासत यात्राएँ निकाली गईं, तकनीकी संगोष्ठियाँ आयोजित हुईं, विद्यार्थियों के लिए चित्रकला और निबंध प्रतियोगिताएँ हुईं, कर्मचारियों ने अपने अनुभव साझा किए और भविष्य की हरित एवं ऊर्जा-कुशल रेल की नई कल्पनाएँ प्रस्तुत कीं।

मैं उस दिन अपने अतीत को याद कर रही थी। मुझे याद आया कि जब मेरे पहियों को पहली बार बिजली की शक्ति मिली थी, तब किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि एक दिन मैं दुनिया के सबसे बड़े विद्युतीकृत रेल नेटवर्कों में शामिल हो जाऊँगी। मेरी गति बढ़ेगी, मेरा धुआँ कम होगा, ऊर्जा की बचत होगी और पर्यावरण भी राहत की साँस लेगा। लेकिन उस उत्सव में मुझे सबसे अधिक गर्व किसी और बात पर हुआ।

देश के अलग-अलग कोनों से आए अभियंता, कर्मचारी, विद्यार्थी और अधिकारी अपने विचार हिन्दी में भी व्यक्त कर रहे थे। कहीं “विद्युतीकरण के सौ स्वर्णिम वर्ष” पर निबंध लिखे जा रहे थे, कहीं युवा अभियंता हिन्दी में अपने शोध प्रस्तुत कर रहे थे, कहीं बच्चे भविष्य की पर्यावरण-अनुकूल रेल का चित्र बना रहे थे। मुझे लगा, जैसे मेरी विद्युत तारों में केवल बिजली ही नहीं, हिन्दी के शब्द भी प्रवाहित हो रहे हों।

उस क्षण मेरे मन में एक अद्भुत विचार आया - बिजली ने मेरी रफ्तार बढ़ाई है, पर हिन्दी ने मेरे हृदय की धड़कन को करोड़ों भारतीयों तक पहुँचाया है। विद्युतीकरण ने मुझे आधुनिक बनाया है, पर हिन्दी ने मुझे आत्मीय बनाया है। मेरे लाखों कर्मचारी भी इस यात्रा के साथी हैं। वे केवल इंजन नहीं चलाते, पटरियाँ नहीं बिछाते, सिग्नल नहीं संभालते; वे हिन्दी दिवस मनाते हैं, राजभाषा कार्यशालाओं में भाग लेते हैं, कविताएँ लिखते हैं, लेख रचते हैं और यह

सुनिश्चित करते हैं कि मेरी आवाज देश के अंतिम यात्री तक उसकी समझ की भाषा में पहुँचे।

मेरे पहिए समय के साथ चलते रहेंगे, मेरी तकनीक बदलती रहेगी, मेरे इंजन और अधिक आधुनिक होते जाएँगे; पर यदि मेरी यात्रा का कोई शाश्वत साथी है, तो वह हिन्दी है—जो हर उद्घोषणा में, हर मुस्कान में, हर मिलन में और हर विदाई में भारत को स्वयं से मिलाती रहेगी।

रचनाएँ भेजने हेतु निवेदन

- आपकी उत्कृष्ट रचनाओं का ‘रेल राजभाषा’ में स्वागत है।
- अपनी रचनाओं की मूल प्रति ही भेजें। लेख/कविता आदि के साथ एक घोषणा पत्र भी संलग्न करें, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि शीर्षक से शुरू होने वाला लेख/कहानी/कविता आदि मौलिक एवं अप्रकाशित है तथा इसमें दी गई सामग्री एवं फोटो की जिम्मेदारी लेखक की है। लेख/कहानी/कविता आदि से संबंधित फोटो सामग्री के साथ भेजें। रचनाएं यूनिकोड फॉर्मेट/मंगल में टाइप कराकर वर्ड फाइल के रूप में ही भेजें।
- पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए लेखकों और पाठकों के पत्रों एवं सुझावों का स्वागत है।
- लेखकों से अनुरोध है कि अपना फोटो (जेपीजी फॉर्मेट में), नाम, पता, मोबाइल नं., ई-मेल आईडी, बैंक खाता विवरण और चेक की एक फोटोकॉपी अपनी टाइप की हुई रचना के साथ हमारे ई-मेल patrikahindi@gmail.com पर भेजें।

—संपादक, रेल राजभाषा



कृत्रिम मेधा: हिंदी भाषा के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार का सशक्त साधन

भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं, बल्कि किसी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, परंपराओं और सामूहिक चेतना की संवाहक होती है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने अनुभवों, भावनाओं और ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है। हिंदी भारत की प्रमुख भाषाओं में से एक है और करोड़ों लोगों के जीवन, व्यवहार तथा अभिव्यक्ति से जुड़ी हुई है। बदलते समय के साथ हिंदी का स्वरूप भी निरंतर विकसित हुआ है। मुद्रण युग से लेकर रेडियो, दूरदर्शन और इंटरनेट तक हिंदी ने हर माध्यम को अपनाया है। आज हम कृत्रिम मेधा के युग में प्रवेश कर चुके हैं। कृत्रिम मेधा, जिसे अंग्रेजी में Artificial Intelligence कहा जाता है, मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, उद्योग, प्रशासन, संचार और साहित्य के साथ-साथ भाषा के क्षेत्र में भी इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

कृत्रिम मेधा हिंदी भाषा के लिए केवल आधुनिक तकनीक नहीं, बल्कि एक ऐसा सशक्त साधन बनकर उभर रही है, जो हिंदी के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार को नई दिशा दे सकती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इस तकनीक को समझें, उसके अवसरों का उपयोग करें और उसके साथ जुड़ी चुनौतियों के प्रति भी सजग रहें।

कृत्रिम मेधा का अर्थ और स्वरूप

कृत्रिम मेधा ऐसी तकनीकी प्रणाली है, जिसके माध्यम से कंप्यूटर और मशीनें मानव की तरह सीखने, समझने, विश्लेषण करने और कार्य करने का प्रयास करती हैं। मशीन लर्निंग, प्राकृतिक भाषा संसाधन, वाक् पहचान, स्वचालित अनुवाद और संवाद प्रणाली इसके प्रमुख आधार हैं। सरल शब्दों में कहा जाए

तो कृत्रिम मेधा मशीनों को इस योग्य बनाती है कि वे मानव भाषा और व्यवहार से संबंधित कार्यों को समझकर प्रतिक्रिया दे सकें।

भाषा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष प्राकृतिक भाषा संसाधन है। इसके माध्यम से कंप्यूटर हिंदी वाक्यों, शब्दों और ध्वनियों को समझने का प्रयास करते हैं। आज बोलकर हिंदी लिखना, हिंदी पाठ का अनुवाद करना, वर्तनी की त्रुटियाँ पहचानना तथा किसी विषय पर सामग्री तैयार करना संभव हो गया है। यह परिवर्तन हिंदी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हिंदी तकनीक की भाषा के रूप में भी अपनी पहचान मजबूत कर रही है।

हिंदी भाषा के संरक्षण में कृत्रिम मेधा की भूमिका

किसी भी भाषा का संरक्षण केवल उसके बोलने वालों की संख्या पर निर्भर नहीं करता। भाषा का साहित्य, शब्द-संपदा, लोकपरंपराएँ, लोकगीत, कहावतें और ऐतिहासिक दस्तावेज भी उसके संरक्षण का आधार होते हैं। कृत्रिम मेधा इन सभी क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

भारत और विश्व के विभिन्न पुस्तकालयों तथा संस्थानों में सुरक्षित हिंदी की अनेक पुरानी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ और पांडुलिपियाँ समय के प्रभाव से क्षतिग्रस्त हो रही हैं। कृत्रिम मेधा आधारित तकनीकें इन दस्तावेजों को पढ़कर उनका डिजिटल रूप तैयार करने में सहायता कर सकती हैं। इस प्रक्रिया से पुरानी सामग्री को सुरक्षित रखा जा सकता है और आने वाली पीढ़ियाँ भी उसका अध्ययन कर सकती हैं।



विभा कनन

कोयम्बतूर, तमिलनाडु



हिंदी के दुर्लभ शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का डिजिटल संग्रह तैयार करना भी संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है। कृत्रिम मेधा बड़े स्तर पर भाषाई सामग्री का विश्लेषण कर सकती है। इससे यह पता लगाने में सहायता मिलती है कि कौन-से शब्द प्रचलन से बाहर हो रहे हैं और कौन-से नए शब्द भाषा में प्रवेश कर रहे हैं।

भारत की भाषाई विविधता में हिंदी की अनेक बोलियाँ और क्षेत्रीय रूप शामिल हैं। लोकभाषाओं और बोलियों में लोकजीवन, संस्कृति और परंपराओं का अद्भुत ज्ञान छिपा होता है। यदि इन बोलियों के शब्दों, गीतों और कथाओं का डिजिटल संग्रह तैयार किया जाए, तो कृत्रिम मेधा के माध्यम से उनका संरक्षण संभव हो सकता है। इस प्रकार तकनीक भाषा की विविधता को मिटाने के बजाय उसे सुरक्षित रखने का साधन बन सकती है।

हिंदी के संवर्धन में कृत्रिम मेधा का योगदान

भाषा का संवर्धन तभी संभव है, जब वह समय की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को विकसित करे। हिंदी ने समय के साथ विज्ञान, तकनीक, व्यापार और प्रशासन की शब्दावली को अपनाया है। कृत्रिम मेधा इस विकास को और गति प्रदान कर सकती है।

आज वॉइस टाइपिंग हिंदी लेखन को अत्यंत सरल बना रही है। ऐसे लोग जिन्हें हिंदी टाइप करना कठिन लगता है, वे केवल बोलकर अपने विचार लिख सकते हैं। इससे हिंदी लेखन का दायरा बढ़ता है। विद्यार्थियों, शिक्षकों, गृहिणियों, वरिष्ठ नागरिकों और तकनीकी जानकारी कम रखने वाले लोगों के लिए

यह सुविधा विशेष रूप से उपयोगी है।

कृत्रिम मेधा आधारित वर्तनी और व्याकरण सुधारक हिंदी लेखन को अधिक शुद्ध बनाने में सहायता करते हैं। हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों को अपनी गलतियों को पहचानने और सुधारने का अवसर मिलता है। इससे भाषा-अधिगम अधिक प्रभावी और व्यक्तिगत बन सकता है।

कृत्रिम मेधा हिंदी में नए शब्दों के निर्माण और उनके प्रयोग के अध्ययन में भी सहायक हो सकती है। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में प्रतिदिन नए शब्द सामने आते हैं। यदि इन शब्दों के उपयुक्त हिंदी रूप

विकसित किए जाएँ और उनका सहज प्रयोग बढ़ाया जाए, तो हिंदी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में और अधिक सशक्त हो सकती है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में कृत्रिम मेधा

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कृत्रिम मेधा का सबसे बड़ा योगदान भाषाई सीमाओं को कम करना है। स्वचालित अनुवाद के माध्यम से हिंदी

सामग्री को अन्य भाषाओं में और विदेशी भाषाओं की सामग्री को हिंदी में प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे हिंदी साहित्य, विचार और ज्ञान विश्व के अधिक लोगों तक पहुँच सकता है।

आज डिजिटल मंचों, सामाजिक माध्यमों और ऑनलाइन शिक्षा के कारण हिंदी सामग्री की पहुँच बहुत व्यापक हो गई है। कृत्रिम मेधा उपयोगकर्ता की रुचि और आवश्यकता के अनुसार सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता करती है। हिंदी में तैयार शैक्षिक वीडियो, लेख, समाचार और साहित्यिक सामग्री भारत के साथ-साथ विदेशों में भी देखी और पढ़ी जा रही है।





विदेशों में रहने वाले भारतीयों के लिए हिंदी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का माध्यम है। कृत्रिम मेधा आधारित भाषा शिक्षण उपकरण उनके बच्चों और नई पीढ़ी को हिंदी सीखने में सहायता कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी नागरिक भी हिंदी के उच्चारण, शब्दावली और वाक्य-रचना का अभ्यास कर सकते हैं। इस प्रकार हिंदी का प्रचार-प्रसार विश्व स्तर पर अधिक सरल और प्रभावी बन सकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा और हिंदी

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि हिंदी शिक्षण को रोचक और प्रभावी बनाया जाए, तो नई पीढ़ी हिंदी से अधिक गहराई से जुड़ सकती है। कृत्रिम मेधा इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रही है।

शिक्षक कृत्रिम मेधा की सहायता से पाठ योजनाएँ, कार्यपत्रक, प्रश्नपत्र, गतिविधियाँ और मूल्यांकन सामग्री तैयार कर सकते हैं। हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार अभ्यास तैयार किया जा सकता है। किसी विद्यार्थी को शब्दावली में कठिनाई है तो उसे शब्द-अभ्यास दिया जा सकता है; किसी को उच्चारण में समस्या है तो उसके लिए वाक-अभ्यास तैयार किया जा सकता है।

कृत्रिम मेधा आधारित डिजिटल माध्यम हिंदी के उच्चारण और श्रवण कौशल को विकसित करने में भी सहायक हैं। विद्यार्थी शब्द सुनकर उनका उच्चारण दोहरा सकते हैं और अपनी प्रगति का आकलन कर सकते हैं। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए भी आवाज आधारित तकनीक उपयोगी हो सकती है।

ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में, जहाँ गुणवत्तापूर्ण शिक्षण संसाधनों की कमी है, डिजिटल तकनीक हिंदी शिक्षा को अधिक व्यापक बना सकती है। इस प्रकार कृत्रिम मेधा हिंदी शिक्षा को अधिक समावेशी और विद्यार्थी-केंद्रित बनाने की क्षमता रखती है।

साहित्य और रचनात्मकता के क्षेत्र में उपयोगिता

हिंदी साहित्य का संसार अत्यंत समृद्ध है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आलोचना के क्षेत्र में हिंदी ने अनेक महान रचनाकारों को जन्म दिया है। कृत्रिम मेधा साहित्य के क्षेत्र में भी नई संभावनाएँ उत्पन्न कर रही है।

लेखक शोध-सामग्री एकत्र करने, विषय से संबंधित जानकारी व्यवस्थित करने और लेखन की प्रारंभिक योजना बनाने में कृत्रिम मेधा की सहायता ले सकते हैं। पुराने साहित्य को डिजिटल रूप में खोजने और उसका विश्लेषण करने में भी तकनीक उपयोगी है। शोधकर्ताओं के लिए बड़ी मात्रा में उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है।

हालाँकि यह स्पष्ट समझना आवश्यक है कि कृत्रिम मेधा लेखक की मौलिक संवेदना और रचनात्मकता का स्थान नहीं ले सकती। साहित्य केवल शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि जीवनानुभव और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इसलिए कृत्रिम मेधा को साहित्यकार का सहायक माना जाना चाहिए, रचनाकार का विकल्प नहीं।

मीडिया और प्रशासन में हिंदी का विस्तार

मीडिया के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। समाचारों का अनुवाद, उपशीर्षक तैयार करना, वर्तनी सुधारना और विभिन्न भाषाओं में सामग्री उपलब्ध कराना अब अधिक तीव्र गति से संभव है। इससे हिंदी पत्रकारिता का दायरा बढ़ रहा है।

प्रशासन में भी हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने में कृत्रिम मेधा सहायक हो सकती है। सरकारी सेवाओं और योजनाओं की जानकारी यदि सरल हिंदी में उपलब्ध हो, तो आम नागरिकों के लिए उन्हें समझना आसान होता है। संवाद आधारित सहायता प्रणाली नागरिकों के प्रश्नों का उत्तर हिंदी में दे सकती है। इससे प्रशासन और जनता के बीच भाषाई दूरी कम हो सकती है।



डिजिटल युग में हिंदी का वैश्विक विस्तार

कृत्रिम मेधा के कारण हिंदी के लिए वैश्विक स्तर पर नए अवसर भी उत्पन्न हुए हैं। अंतरराष्ट्रीय मंचों, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और डिजिटल संवाद में हिंदी का उपयोग बढ़ रहा है। यदि हिंदी में गुणवत्तापूर्ण सामग्री, सरल भाषा-शिक्षण संसाधन और बहुभाषी डिजिटल मंच विकसित किए जाएँ, तो विश्व के विभिन्न देशों के लोग हिंदी से जुड़ सकते हैं। भारतीय संस्कृति, योग, संगीत, सिनेमा और साहित्य के प्रति बढ़ती वैश्विक रुचि हिंदी के प्रचार का आधार बन सकती है। कृत्रिम मेधा इन क्षेत्रों की सामग्री को अनेक भाषाओं तक पहुँचाकर हिंदी को विश्व संवाद का प्रभावी माध्यम बनाने में सहयोग कर सकती है।

डिजिटल भारत और हिंदी का भविष्य

भारत में डिजिटल तकनीक का विस्तार भारतीय भाषाओं के लिए नई संभावनाएँ लेकर आया है। डिजिटल माध्यमों पर हिंदी की उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। यदि तकनीकी मंचों और डिजिटल सेवाओं में हिंदी को अधिक महत्त्व दिया जाए, तो हिंदी का भविष्य और अधिक उज्ज्वल हो सकता है।

आने वाले समय में हिंदी में वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक साहित्य की आवश्यकता बढ़ेगी। कृत्रिम मेधा इस दिशा में अनुवाद और सामग्री निर्माण को गति दे सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी अपनी भाषा में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। हिंदी के माध्यम से विज्ञान और तकनीक की जानकारी अधिक लोगों तक पहुँच सकेगी।

हिंदी को केवल भावनाओं और साहित्य की भाषा तक सीमित न रखकर ज्ञान, अनुसंधान और नवाचार की भाषा बनाना आवश्यक है। कृत्रिम मेधा इस लक्ष्य की प्राप्ति में महत्वपूर्ण सहयोगी सिद्ध हो सकती है।

कृत्रिम मेधा के समक्ष चुनौतियाँ

कृत्रिम मेधा के अनेक लाभ हैं, परंतु इसके समक्ष कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी हैं। हिंदी एक समृद्ध और भावप्रधान भाषा है। हिंदी के मुहावरों, लोकोक्तियों

और सांस्कृतिक संदर्भों का सही अर्थ समझना मशीनों के लिए हमेशा आसान नहीं होता। कई बार स्वचालित अनुवाद में शब्दों का शाब्दिक रूपांतरण तो हो जाता है, लेकिन मूल भाव नष्ट हो जाता है।

दूसरी चुनौती भाषा की शुद्धता से संबंधित है। यदि कृत्रिम मेधा को गलत या अपूर्ण भाषाई सामग्री से प्रशिक्षित किया जाए, तो वह भी त्रुटिपूर्ण परिणाम दे सकती है। इसलिए हिंदी के लिए गुणवत्तापूर्ण और विश्वसनीय डिजिटल सामग्री का निर्माण आवश्यक है।

तीसरी चुनौती मानव रचनात्मकता और मौलिकता से जुड़ी है। यदि लोग बिना विचार किए कृत्रिम मेधा पर निर्भर हो जाएँ, तो उनकी भाषा और सोचने की क्षमता प्रभावित हो सकती है। शिक्षा और साहित्य में इस तकनीक का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यक है।

भाषा और तकनीक का संतुलित समन्वय

कृत्रिम मेधा को हिंदी के विकास का साधन बनाने के लिए भाषा विशेषज्ञों, शिक्षकों, साहित्यकारों, तकनीकी विशेषज्ञों और नीति-निर्माताओं को मिलकर कार्य करना होगा। हिंदी के लिए गुणवत्तापूर्ण भाषा मॉडल विकसित किए जाने चाहिए। क्षेत्रीय बोलियों और लोकभाषाओं को भी तकनीकी संसाधनों में स्थान दिया जाना चाहिए।

विद्यालयों और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को कृत्रिम मेधा के सही और नैतिक उपयोग की जानकारी दी जानी चाहिए। उन्हें यह समझाना आवश्यक है कि तकनीक सहायता दे सकती है, लेकिन विचार, संवेदना और मौलिकता मनुष्य की अपनी शक्ति है।

हिंदी के विकास के लिए तकनीकी शब्दावली को सरल और जनसुलभ बनाना भी आवश्यक है। यदि तकनीक की भाषा अत्यधिक कठिन होगी, तो सामान्य व्यक्ति उससे दूर हो जाएगा। इसलिए हिंदी और कृत्रिम मेधा के बीच ऐसा संबंध स्थापित होना चाहिए, जो तकनीक को सरल और भाषा को सशक्त बनाए।

कृत्रिम मेधा आधुनिक युग की एक क्रांतिकारी



उपलब्धि है। हिंदी भाषा के संदर्भ में यह केवल तकनीकी सुविधा नहीं, बल्कि संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार का सशक्त साधन बन सकती है। पुरानी साहित्यिक धरोहर को सुरक्षित रखने से लेकर हिंदी के नए डिजिटल रूपों के विकास तक, कृत्रिम मेधा की भूमिका अत्यंत व्यापक है।

शिक्षा, साहित्य, मीडिया, प्रशासन और वैश्विक संवाद के क्षेत्र में यह हिंदी को नई शक्ति प्रदान कर रही है। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा का मूल आधार मनुष्य है। तकनीक तभी उपयोगी है, जब वह मानवीय संवेदना, संस्कृति और रचनात्मकता के साथ जुड़ी हो। कृत्रिम मेधा को हिंदी का विकल्प नहीं,

बल्कि हिंदी की सहयोगी शक्ति बनाना होगा। आज आवश्यकता है कि हम हिंदी को तकनीक से जोड़ें, उसके लिए गुणवत्तापूर्ण डिजिटल संसाधन तैयार करें और नई पीढ़ी को आधुनिक तकनीक के साथ अपनी भाषा से भी जोड़ें। यदि ऐसा किया गया, तो हिंदी आने वाले समय में विश्व की प्रमुख डिजिटल और ज्ञान-भाषाओं में अपना सशक्त स्थान बना सकेगी।

“भाषा तभी जीवित रहती है, जब वह समय के साथ स्वयं को बदलते हुए भी अपनी आत्मा को सुरक्षित रखती है। कृत्रिम मेधा हिंदी के लिए ऐसा ही एक सशक्त माध्यम बन सकती है।”

सज्जनता- एक परम् सुखकारी सद्गुण

सज्जनता हो निज स्वभाव में ऐसा सतत प्रयास करें।
सत्कर्मों की शुचि सुवास से हम अपना मन-प्राण भरें।
मानवता की प्रथम शर्त हम सज्जनता को मानें।
कटु वचनों से दूर रहेंगे ऐसा मन में ठानें।
संकल्पित होकर आओ हम जन-जन का सम्मान करें।
सत्कर्मों की शुचि सुवास से हम अपना मन-प्राण भरें।
रीति नीति बोने-पाने की जीवन में अपनाएँ।
बन उदार औरों के प्रति हम उनके दर्द बटाएँ।
हम सबके हैं सभी हमारे इससे सबका मान करें।
सत्कर्मों की शुचि सुवास से हम अपना मन-प्राण भरें।
वाणी हो शालीन हमारी इसकी गरिमा जानें।
स्रष्टा के हम राज कुंवर है अपने को पहचाने।
नेक बनेंगे हम जीवन में यह सब ही गुणगान करें।



श्यामलाल शर्मा

गायत्रीतीर्थ-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

सत्कर्मों की शुचि सुवास से हम अपना मन-प्राण भरें।
सज्जनता के सद्गुण से हम जीवन ज्योति जलायें।
बेशकीमती अपनेपन से मूल्यवान बन जायें।
ऐसी निधि वाले इस गुण पर हम सब कुछ
बलिदान करें।
सत्कर्मों की शुचि सुवास से हम अपना मन-प्राण भरें।



काश...

प्रभात, ये देखो, मेल आ गया। मेरा कन्वोकेशन अगले वीक पांच तारीख को है, तुम्हें घर की एयर टिकट करवानी होंगी।

“प्रयागराज की? तारीख बताओ, अभी टिकट्स करवा देता हूँ। और हाँ मैडम, अब आपका घर मायका नहीं, ये घर है, जहाँ आप मेरे यानि अपने इस नाचीज हस्बैंड के साथ रहती हैं।”

मायका शब्द सुनते ही दिवंगत माँ की सौम्य-सुंदर छवि मानस-चक्षुओं में तैर आई थीं।

मेरे लिए मायका मतलब माँ ही तो था।

गले में एक घुटी हुई-सी सिसकी उठी।

“ओ सिम्मी, अब रोना शुरू मत कर देना, प्लीज।” प्रभात ने मुझसे कहा।

“तो मैं तीन तारीख की प्रयागराज की टिकट्स करवा देता हूँ। तुम पांच के बाद कुछ दिन भैया-भाभी के पास रुक जाना। मैं लौट आऊँगा,” प्रभात ने मुझ से कहा।

“यार, अब तो मम्मी जी को गुजरे पूरा महीना गुजर गया। नाती-पोतों वाला भरा-पूरा परिवार छोड़ कर पचासी की उम्र में गई हैं वे। हम सब राजी खुशी हैं। उनकी आत्मा हम सब को सुखी देख बहुत सुकून से होगी। तो फिर रोना किस बात का?”

प्रभात के मुंह से माँ के बारे में सुन मैं फफक पड़ी थी और हमेशा की तरह प्रभात झुंझलाकर हो कर दूसरे रूम में चले गए थे।

माह भर पहले माँ के देहांत के बाद से मेरी तो मानो दुनिया ही उजड़ गयी थी। पिता की मेरे बचपन में ही मृत्यु के बाद माँ ने मुझे और बड़े भाई और बहन को दोनों माँ और पिता का लाड़ दुलार दिया था। मैं, उनकी सबसे छोटी लाड़ली बिटिया, उन्होंने मुझे अपनी ठंडी छांह में हर संभव तपिश से बचा कर रखा था।

स्कूल में टीचर की छोटी सी तनख्वाह में उन्होंने मुझे शहजादी बना कर पाला था। बड़े भाई-बहन के दस खर्चों के बावजूद उन्होंने मुझे कभी किसी चीज की कमी नहीं होने दी। तंगहाल होते हुए भी वे मेरी हर ख्वाहिश पूरी कर देतीं।

मैं शुरू से आखिर तक उनकी छाती से चिपट कर सोती। यहाँ तक कि शादी के बाद भी मुझे सोते वक्त उनकी देह गंध याद आती, जिसके बारे में सुन प्रभात ने महीनों मेरा बहुत मजाक उड़ाया था। सोते वक्त अपनी उँगलियों पर उनके पेट के तिल की छुअन शिद्दत से मिस करती।

रात को प्रभात की बाँहों में बंधे

हुए भी मुझे माँ की याद शिद्दत से सताती रही थी। प्रभात तो बहुत जल्दी सो गए थे, लेकिन मुझे देर रात तक नींद नहीं आई थी। मन बेहद अशांत और बेचैन था।

यह सोच कर ही जी रेशा-रेशा हो रहा था कि इस बार मायके में माँ नहीं मिलेंगी।

नियत दिन पर मैं घर पहुँची। घर पर सब कुछ पहले जैसा ही था, नहीं थीं तो बस माँ जो हर बार मेरे घर पहुँचने पर अपूर्व खुशी से खिल उठती थीं। मुझे अपनी कमजोर बाँहों में भींच चूम लेती थीं। ढेरों असीस देती थीं, “सुहाग-भाग बना रहे, दूधो नहाओ, पूतों फलो।” घर के कोने-कोने में उनकी यादें थीं। पिता के जमाने का उनका खाली डबल बेड देख जी भर आया था। मुझे यूँ लग रहा था मानो अभी माँ कहीं से आकर हमेशा की तरह बेड पर बैठ जाएँगी और मुझसे कहेंगी, “आजा, मेरे पास बैठ जा।” मुझसे उनका सूना कमरा, सूना बेड देखा नहीं गया था और मैं गले में उमड़ती रुलाई के साथ बाहर आ गई थी।

यह पहली बार था कि मुझे मायके में सुकून नहीं मिल रहा था।

कन्वोकेशन में काले चोगे में मुझे डिग्री लेते देख माँ कितनी खुश होती।

अपनी शादी पर माँ का खुशी से दमकता खिला-खिला चेहरा मेरे जेहन में कौंध उठा था।

काश माँ, आप थोड़े दिन और रह जातीं।



रेणु गुप्ता
जयपुर



बाउल गान : मानवता का संगीत

भारत की सांस्कृतिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। यहाँ प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट लोक-संस्कृति, लोककला और लोकसंगीत है। इन्हीं लोक परंपराओं में बंगाल का बाउल गान (BaulGaan) एक अद्वितीय और आध्यात्मिक लोक संगीत परंपरा है। बाउल केवल गीत नहीं है, बल्कि यह जीवन-दर्शन, मानवता, प्रेम, आत्मानुभूति और ईश्वर की खोज का मार्ग है। बाउल परंपरा का इतिहास लगभग पाँच सौ वर्ष पुराना माना जाता है। बाउल परंपरा का विकास पश्चिम बंगाल और वर्तमान बांग्लादेश में भक्ति आंदोलन और सूफी परंपरा के समन्वय से हुआ। श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रेम-भक्ति तथा सूफी संतों की मानवतावादी विचारधारा ने इस परंपरा को गहराई से प्रभावित किया। इस परंपरा पर वैष्णव भक्ति आंदोलन, सूफी विचारधारा और बौद्ध सहजिया दर्शन का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। बाउल गायक समाज में जाति, धर्म और वर्ग

भेदभाव का विरोध करते हुए प्रेम, समानता और भाईचारे का संदेश देते हैं। इसी कारण बाउल संगीत केवल

बंगाल तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आज विश्वभर में अपनी पहचान बना चुका है।

बाउल शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत हैं। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि यह संस्कृत के “वातुल” (अर्थात् ईश्वर- प्रेम में मग्न या दिव्य उन्माद से



संजय प्रसाद

वरिष्ठ अनुवादक,
दक्षिण पूर्व रेलवे,
कोलकाता



युक्त) शब्द से बना है। कुछ लोग इसे “व्याकुल” शब्द से तो कुछ विद्वान इसे बांग्ला शब्द बातुल से जोड़ते हैं जिसका अर्थ है सांसारिक मोह से मुक्त होकर ईश्वर प्रेम में डूबा हुआ साधक। इस प्रकार बाउल वह व्यक्ति है, जो सांसारिक मोह-माया से ऊपर उठकर प्रेम, संगीत और आध्यात्मिक साधना में लीन रहता है। बाउल

को केवल लोकगायक कहना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। बाउल एक साधक है, एक



पथिक है और कहीं न कहीं एक लोक दार्शनिक भी। वह संगीत के माध्यम से स्वयं को और अपने भीतर बसे परम सत्य को खोजने का प्रयास करता है। यही कारण है कि बाउल गीत सुनते समय कभी वह प्रेम गीत जैसा प्रतीत होता है, तो उसी गीत में थोड़ी गहराई से उतरने पर आध्यात्मिक दर्शन दिखाई देने लगता है।

बाउल संगीत के लिए भव्य मंच अथवा विशाल वाद्यवृंद की आवश्यकता नहीं होती। एक बाउल साधक हाथ में एकतारा लेकर गाना शुरू करता है और कुछ ही क्षणों में श्रोता को अपने संसार में ले जाता है। एकतारा बाउल की लगभग प्रतीकात्मक पहचान बन चुका है। इसके अतिरिक्त डोटारा, खमक, दुग्गी, करताल और मंजीरा जैसे लोकवाद्यों का प्रयोग भी किया जाता है। बाउल गायन में कलाकार का शरीर भी संगीत का हिस्सा बन जाता है। गाते हुए उसका झूमना, नृत्य करना और श्रोताओं से संवाद स्थापित करना प्रस्तुति को जीवंत अनुभव में बदल देता है। बंगाल की लाल मिट्टी, खुले आकाश, एकतारे की धुन और बाउल की आवाज मिलकर एक ऐसा सांस्कृतिक वातावरण निर्मित करते हैं, जिसमें लोक और दर्शन के बीच की दूरी मिटती हुई प्रतीत होती है।

बाउल दर्शन में मानव को सर्वोच्च माना गया है तथा प्रेम ही ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है इसमें जाति, धर्म और संप्रदाय का भेद निरर्थक हैं। बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा आंतरिक साधना अधिक महत्वपूर्ण है। संगीत आत्मा और परमात्मा के बीच संवाद का माध्यम है। बाउल गीत सरल भाषा में रचे जाते हैं। इनमें गहन आध्यात्मिक विचार होते हुए भी सामान्य

व्यक्ति उन्हें आसानी से समझ सकता है। सरल एवं मधुर भाषा, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयवस्तु, मानवता और प्रेम का संदेश, सहज संगीत शैली, लोकधुनों का प्रयोग, भावपूर्ण गायन, श्रोताओं के साथ आत्मीय संवाद इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। बाउल गायक अपने गीत गाते समय किसी औपचारिक मंच के बजाय गाँवों, मेलों और उत्सवों में लोगों के बीच बैठकर प्रस्तुति देते हैं। इससे कलाकार और श्रोता के बीच निकटता बनी रहती है।



बाउल परंपरा की चर्चा लालन फकीर या लालन शाह के बिना अधूरी है। वे बंगाल की लोक-सांस्कृतिक परंपरा के महान संत-कवि और दार्शनिक माने जाते हैं। उनके प्रसिद्ध गीत 'सब लोके कोई लालन की जात संसारे' में लालन स्वयं को जातिगत पहचान में बाँधने से इनकार करते हुए मानवीय पहचान को



सर्वोपरि रखते हैं। उनका यह विचार आधुनिक समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है। लालन फकीर का अत्यंत प्रसिद्ध गीत है- 'खाँचार भीतर अचिन पाखी, केमने आशे जाय...' इसमें शरीर को पिंजरे और आत्मा को अनजान पक्षी के रूप में देखा गया है। अर्थात् इस शरीर रूपी पिंजरे में एक अनजान पक्षी आता-जाता रहता है, लेकिन मनुष्य यह समझ नहीं पाता कि वह कहाँ से आया और कहाँ चला जाएगा। यहाँ 'अचिन पाखी' आत्मा अथवा जीवन-चेतना का अत्यंत सुंदर प्रतीक बन जाता है।

इतनी गहरी दार्शनिक बात को पिंजरे और पक्षी जैसे साधारण लोक-प्रतीकों से समझा देना ही बाउल काव्य की सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक है। साधक परमात्मा से मिलन की प्रतीक्षा में व्याकुल है। जाति के नाम पर घमंड करना व्यर्थ है; मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्म और चरित्र में है। मनुष्य का जीवन अत्यंत दुर्लभ है, इसलिए इसे आत्मज्ञान और प्रेम के मार्ग पर लगाना चाहिए। गीत के माध्यम से प्रश्न करता है और श्रोता को स्वयं उत्तर खोजने देता है। यही कारण है कि बाउल गान को केवल लोक-संगीत के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है।

यह सामाजिक समरसता का भी संगीत है। इसके अलावा पांजू शाह, मुक्शेद अली शाह, पावन दास बाउल, पूर्ण दास बाउल और पार्वती बाउल जैसे कलाकारों ने भी बाउल संगीत को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बाउल गीतों की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्ता को देखते हुए यूनेस्को ने वर्ष 2008 में इसे मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर की प्रतिनिधि सूची में शामिल किया। यह भारत और बांग्लादेश दोनों के लिए गौरव का विषय है। इस मान्यता के बाद विश्वभर में बाउल संगीत के संरक्षण और प्रचार-प्रसार को नई गति मिली। आज बाउल संगीत भारत ही नहीं, बल्कि यूरोप, अमेरिका, जापान और अनेक अन्य देशों में भी लोकप्रिय हो रहा है। कई बाउल कलाकार अंतरराष्ट्रीय

मंचों पर प्रस्तुति दे रहे हैं। हालाँकि आधुनिकता, व्यावसायीकरण और बदलती जीवनशैली के कारण इस परंपरा के सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। नई पीढ़ी का लोकसंगीत से दूर होना, पारंपरिक कलाकारों की आर्थिक कठिनाइयाँ तथा लोकवाद्यों का कम होता प्रयोग चिंता का विषय है। फिर भी अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ, विश्वविद्यालय और कलाकार इस अमूल्य विरासत के संरक्षण में लगे हुए हैं।

बाउल गान बंगाल की आत्मा और भारतीय लोक-संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इसमें संगीत, दर्शन, भक्ति, लोकजीवन और मानवता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। लालन फकीर जैसे महान संतों ने इसे नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया, जबकि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे विश्व के सामने प्रतिष्ठित किया। आज आवश्यकता है कि हम इस महान लोक परंपरा का संरक्षण करें, युवा पीढ़ी को इससे परिचित कराएँ तथा बाउल संगीत में निहित प्रेम, समानता और आध्यात्मिकता के संदेश को अपने जीवन में अपनाएँ। यही इस महान सांस्कृतिक विरासत के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

“

हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति
का एक बहुत सरल स्रोत है।

- सुमित्रानंदन पंत



”



विवाह : बंधन नहीं, बल्कि जीवन का सशक्त आधार

आज का युवा शिक्षित है, आत्मनिर्भर है और अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने में विश्वास रखता है। यह परिवर्तन समाज के विकास का सकारात्मक संकेत है। किंतु इसी आधुनिक सोच के साथ एक ऐसी प्रवृत्ति भी तेजी से बढ़ रही है, जिसने परिवार और सामाजिक व्यवस्था के भविष्य को लेकर अनेक प्रश्न खड़े कर दिए हैं। यह प्रवृत्ति है विवाह और पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूरी बनाना। आज अनेक युवक-युवतियां विवाह को जीवन का आवश्यक पड़ाव मानने के बजाय, उसे अपनी स्वतंत्रता में बाधा समझने लगे हैं। उन्हें लगता है कि विवाह का अर्थ है जिम्मेदारियों का बोझ, समझौते और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंत। इसलिए वे अपने जीवन को किसी “फ्री बर्ड” की तरह जीना चाहते हैं, जहाँ न किसी के प्रति जवाबदेही हो और न ही किसी प्रकार का बंधन।

निश्चित रूप से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवनशैली चुनने का अधिकार है। लेकिन जीवन केवल वर्तमान का नाम नहीं है। समय के साथ परिस्थितियां बदलती हैं, प्राथमिकताएं बदलती हैं और मनुष्य की आवश्यकताएं भी बदल जाती हैं। युवावस्था का आकर्षण और उत्साह जीवनभर एक समान नहीं रहता। इसलिए किसी भी निर्णय को केवल वर्तमान सुख और सुविधा के

आधार पर लेना बुद्धिमानी नहीं कहलाता।

आज के युवाओं के सामने करियर, प्रतिस्पर्धा और आर्थिक सफलता सबसे बड़ी प्राथमिकता बन चुके हैं। वे मानते हैं कि विवाह से उनके लक्ष्य प्रभावित हो सकते हैं। कुछ लोग



सुनीता पुराकायस्थ

सहायक निदेशक, राजभाषा,
रेलवे बोर्ड



अपने शौक, यात्राएं, मित्र-मंडली और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए विवाह से बचते हैं। लेकिन वास्तविक जीवन केवल कुछ सुखद क्षणों का नाम नहीं है। जीवन का दूसरा पक्ष भी है, जहाँ व्यक्ति को भावनात्मक सहारे, आत्मीय संबंधों और अपनेपन की आवश्यकता होती है।

युवावस्था में व्यक्ति स्वयं को अत्यंत

सक्षम और आत्मनिर्भर महसूस करता है। उसे लगता है कि उसे किसी की आवश्यकता नहीं है। मित्रों का साथ, व्यस्त दिनचर्या और करियर की दौड़ उसे अकेलेपन का एहसास नहीं होने देती। किंतु जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, जीवन की परिस्थितियां बदलने लगती



हैं। मित्र अपने-अपने परिवारों और जिम्मेदारियों में व्यस्त हो जाते हैं। कार्यक्षेत्र से सेवानिवृत्ति के बाद सामाजिक दायरा भी सीमित होने लगता है। तब व्यक्ति को यह महसूस होने लगता है कि जीवन में कोई ऐसा होना चाहिए, जिसके साथ वह अपने सुख-दुख साझा कर सके।

अकेलापन प्रौढ़ावस्था की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी यह बात सामने आई है कि लंबे समय तक सामाजिक और पारिवारिक संबंधों से दूर रहने वाले लोगों में अवसाद, चिंता और मानसिक तनाव की संभावना अधिक होती है। दिनभर व्यस्त रहने वाला व्यक्ति जब शाम को घर लौटता है और उसके सुख-दुख सुनने वाला कोई नहीं होता, तब उसे संबंधों के वास्तविक महत्व का अनुभव होता है।

विवाह केवल दो व्यक्तियों का साथ नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर उतार-चढ़ाव में एक-दूसरे का संबल बनने की प्रक्रिया है। जब जीवन में कठिनाइयाँ आती हैं, बढ़ती उम्र के साथ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं या मानसिक तनाव बढ़ता है, तब एक समर्पित जीवनसाथी सबसे बड़ा सहारा बनता है। ऐसे समय में परिवार न केवल भावनात्मक सुरक्षा देता है, बल्कि जीवन को उद्देश्य भी प्रदान करता है। बच्चों की मुस्कान, उनकी उपलब्धियाँ, परिवार के साथ बिताए गए सुखद क्षण, त्यौहारों का उत्साह और रिश्तों की गर्माहट जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं। जो लोग अपना संपूर्ण जीवन केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर बिताते हैं, वे प्रायः जीवन के उत्तरार्ध में इन अनुभवों की कमी महसूस करते हैं। तब उन्हें यह एहसास होता है कि जीवन की वास्तविक खुशियाँ केवल स्वयं के लिए जीने में नहीं, बल्कि अपनों के साथ जीने में हैं।

कुछ युवा विवाह को जिम्मेदारियों का दूसरा नाम मानकर उससे दूर भागते हैं। वास्तव में जिम्मेदारियाँ ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। माता-पिता, जीवनसाथी और बच्चों के प्रति अपने दायित्वों का

निर्वहन करते हुए व्यक्ति में धैर्य, सहनशीलता, त्याग, संवेदनशीलता और परिपक्वता जैसे गुण विकसित होते हैं। जो लोग जीवनभर केवल अपनी इच्छाओं को सर्वोपरि रखते हैं, वे अक्सर संबंधों की गहराई और आत्मिक संतोष से वंचित रह जाते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि विवाह को किसी सामाजिक दबाव या औपचारिकता के रूप में न देखा जाए। सफल वैवाहिक जीवन का आधार प्रेम, विश्वास, सम्मान और आपसी समझ होती है। इसलिए युवाओं को विवाह का निर्णय सोच-समझकर लेना चाहिए, लेकिन केवल स्वतंत्रता के मोह में उसे अनावश्यक रूप से टालते रहना भी उचित नहीं है। जीवन में संतुलन सबसे महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार करियर आवश्यक है, उसी प्रकार संबंध और परिवार भी जीवन की महत्वपूर्ण जरूरत हैं।

इस दिशा में माता-पिता और समाज की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्हें युवाओं को संवाद और उदाहरण के माध्यम से विवाह एवं पारिवारिक जीवन के महत्व को समझाना चाहिए। वहीं युवाओं को भी यह समझना होगा कि जीवन की हर उपलब्धि का आनंद तभी पूर्ण होता है, जब उसे साझा करने वाला कोई अपना हो।

अंततः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता जीवन का एक महत्वपूर्ण मूल्य है, किंतु पूर्ण स्वतंत्रता का आकर्षण कई बार एक भ्रम भी सिद्ध हो सकता है। मनुष्य मूलतः सामाजिक प्राणी है और उसे संबंधों की आवश्यकता सदैव रहती है। युवावस्था में जो बंधन प्रतीत होते हैं, वही संबंध प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में सबसे बड़ी शक्ति बन जाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि युवा केवल वर्तमान की चमक को देखकर निर्णय न लें, बल्कि भविष्य की वास्तविकताओं पर भी गंभीरता से विचार करें। समय रहते सही निर्णय लेना ही बुद्धिमानी है, क्योंकि जीवन की संध्या में पछतावे से कहीं अधिक सुखद है किसी अपने का साथ, जो हर परिस्थिति में आपका हमसफर बनकर आपके साथ खड़ा रहे।



संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





रेलवे बोर्ड में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 159वीं बैठक की झलकियां

अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी, रेलवे बोर्ड की अध्यक्षता में दिनांक 30 जून, 2026 को रेल भवन में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 159वीं बैठक का आयोजन किया गया। इस अवसर पर अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी रेलवे बोर्ड ने समस्त रेलवे पर हिंदी की प्रगति की समीक्षा की तथा राजभाषा पत्रिका 'रेल राजभाषा' के 144वें अंक का विमोचन भी किया। बैठक की कुछ झलकियां :-





रेलवे बोर्ड में आयोजित पुस्तक चर्चा कार्यक्रम की झलकियां





प्रशासनिक कार्यों में हिंदी ई-टूल्स और कृत्रिम मेधा (AI) की भूमिका विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन

रेलवे बोर्ड (राजभाषा निदेशालय) द्वारा बोर्ड कार्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए 'प्रशासनिक कार्यों में हिंदी ई-टूल्स और कृत्रिम मेधा (AI) की भूमिका' विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 12 जून 2026 को किया गया, जिसमें रेलवे बोर्ड के कर्मचारियों एवं अधिकारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। कार्यशाला की कुछ झलकियां:-





एआई और मशीनी अनुवाद टूल्स के उपयोग के माध्यम से राजभाषा कार्यान्वयन विषय पर कार्यशाला

रेलवे बोर्ड, रेल मंत्रालय में बोर्ड कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए राजभाषा निदेशालय द्वारा एआई और मशीनी अनुवाद टूल्स के उपयोग के माध्यम से राजभाषा कार्यान्वयन विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 22 जुलाई, 2026 को किया गया। इस विषय पर श्री के. पी. सत्यानंदन, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड द्वारा 'हिंदी एआई और मशीनी अनुवाद टूल्स के उपयोग के माध्यम से राजभाषा कार्यान्वयन, विषय' पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए गए। कार्यशाला की कुछ झलकियां :-





पूर्वोत्तर रेलवे मुख्यालय, गोरखपुर में आयोजित अखिल रेल हिंदी निबंध, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन तथा हिंदी वाक् प्रतियोगिता-2025 की झलकियां

रेल कार्यालयों तथा रेल कर्मियों के मध्य हिंदी के प्रयोग-प्रसार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से तथा कर्मचारियों में हिंदी के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) के तत्वावधान में दिनांक 01 सितंबर से 03 सितंबर, 2026 तक अखिल रेल हिंदी निबंध, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन तथा हिंदी वाक् प्रतियोगिता-2025 का आयोजन किया गया, जिसमें सभी क्षेत्रीय रेल कार्यालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। कार्यक्रम के समापन के पश्चात् सभी विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। इस प्रतियोगिता कार्यक्रम की झलकियां :-





पूर्वोत्तर रेलवे मुख्यालय, गोरखपुर में आयोजित अखिल रेल हिंदी निबंध,
हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन तथा हिंदी वाक् प्रतियोगिता-2025 के दौरान
पुरस्कार वितरण की झलकियां





हिंदी : वर्तमान स्थिति और आगे की राह

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

राजभाषा हिंदी की चर्चा करते समय भारतेन्दु हरिश्चंद्र की उपर्युक्त पंक्तियों से बेहतर भूमिका शायद ही कोई हो सकती है। वास्तव में मातृभाषा की उन्नति ही समस्त प्रकार की प्रगति का आधार है। अपनी भाषा के ज्ञान के बिना न तो अज्ञान का अंधकार दूर हो सकता है और न ही मन की पीड़ा का वास्तविक निवारण संभव है।

वर्तमान समय में यह एक चिंताजनक स्थिति है कि हिंदी भाषी समाज का एक बड़ा वर्ग भी हिंदी से धीरे-धीरे दूरी बनाता जा रहा है। अधिकांश अभिभावक अपने बच्चों को प्रारंभ से ही महंगे अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ाना अधिक उचित समझते हैं। यदि कोई विद्यार्थी हिंदी साहित्य में स्नातक अथवा परास्नातक की शिक्षा प्राप्त करता है, तो प्रायः यह मान लिया जाता है कि उसकी बौद्धिक क्षमता विज्ञान या गणित के विद्यार्थियों की तुलना में कम है। यही पूर्वाग्रह विद्यालयी शिक्षा में भी दिखाई देता है। सामान्यतः अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को विज्ञान संकाय मिलता है, अपेक्षाकृत कम अंक पाने वाले कला संकाय में जाते हैं और जिनके अंक सबसे कम होते हैं, उन्हें प्रायः हिंदी विषय चुनने के लिए विवश होना पड़ता है। यह स्थिति न केवल हिंदी भाषा, बल्कि संपूर्ण भारतीय भाषाओं के प्रति समाज की सोच को भी प्रतिबिंबित करती है।

इस भेदभाव के पीछे औपनिवेशिक मानसिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आज भी अंग्रेजी को

ज्ञान, आधुनिकता और उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है। अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्ति को अधिक योग्य समझा जाता है, जबकि हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में दक्ष व्यक्ति को अपेक्षित सम्मान नहीं मिल पाता। एक ओर नई शिक्षा नीति मातृभाषा में



सादिक अंसारी

सहायक अनुभाग अधिकारी,
रेलवे बोर्ड



शिक्षा पर बल देती है, वहीं दूसरी ओर अधिकांश अभिभावक और निजी विद्यालय अंग्रेजी माध्यम को ही सफलता का पर्याय मानते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे अपनी मातृभाषा में सहज और प्रभावी अभिव्यक्ति की क्षमता धीरे-धीरे खोते जा रहे हैं।

उच्च शिक्षा में हिंदी माध्यम की सीमित उपलब्धता भी हिंदी के अपेक्षित प्रसार में एक बड़ी बाधा है। जब हिंदी भाषी विद्यार्थी विद्यालयी शिक्षा पूरी कर उच्च शिक्षा की ओर बढ़ते हैं, तब उन्हें यह अनुभव होता है कि हिंदी में गुणवत्तापूर्ण एवं विश्वसनीय अध्ययन-सामग्री का अभाव है। चिकित्सा, अभियांत्रिकी तथा अन्य तकनीकी विषयों के विद्यार्थियों के सामने यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है, क्योंकि उनके विषयों से संबंधित अधिकांश पुस्तकें अंग्रेजी में उपलब्ध होती हैं। परिणामस्वरूप हिंदी माध्यम से आए विद्यार्थियों



का काफी समय अंग्रेजी माध्यम के अनुरूप स्वयं को ढालने में ही व्यतीत हो जाता है और वे कई बार अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों से पीछे रह जाते हैं। संभवतः यही कारण है कि उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त अनेक अभिभावक अपने बच्चों को प्रारंभ से ही अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाना चाहते हैं, ताकि उन्हें भविष्य में उन भाषाई कठिनाइयों का सामना न करना पड़े जिनका अनुभव उन्होंने स्वयं किया है।

दूसरी ओर सरकारी कार्यालयों में हिंदी के अपेक्षाकृत कम प्रयोग का एक प्रमुख कारण प्रतियोगी परीक्षाओं की वर्तमान व्यवस्था भी है। अधिकांश प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए, कर्मचारी चयन आयोग द्वारा आयोजित संयुक्त स्नातक स्तरीय (सीजीएल) मुख्य परीक्षा में कुल 390 अंकों में से 135 अंकों का प्रश्नपत्र केवल अंग्रेजी भाषा का होता है, जबकि हिंदी से एक भी प्रश्न नहीं पूछा जाता। परिणामस्वरूप चयनित अभ्यर्थियों में अंग्रेजी माध्यम के अभ्यर्थियों की संख्या अधिक होती है और स्वाभाविक रूप से वे कार्यालयी कार्यों में भी अंग्रेजी का अधिक प्रयोग करना पसंद करते हैं।

यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि हिंदी केवल संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि हमारी संस्कृति, इतिहास, साहित्य और सामाजिक मूल्यों की संवाहक भी है। यदि हिंदी कमजोर होगी तो हमारी सांस्कृतिक पहचान भी धीरे-धीरे कमजोर पड़ती जाएगी।

हालाँकि हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसके प्रभावी प्रयोग के लिए भारत सरकार द्वारा निरंतर अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। इनमें भारती सॉफ्टवेयर, जो बहुभाषीय अनुवाद को सरल और तीव्र बनाता है; हिंदी शब्द सिंधु, जो हिंदी का एक उन्नत डिजिटल शब्दकोश है; लीला पोर्टल, जिसके माध्यम से 'प्रबोध', 'प्रवीण', तथा 'प्राज्ञ' जैसे ई-लर्निंग पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए गए हैं; तथा राजभाषा गौरव पुरस्कार एवं राजभाषा कीर्ति पुरस्कार जैसी योजनाएँ उल्लेखनीय हैं। ये सभी पहल हिंदी के विकास और

उसके व्यापक प्रयोग की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

सरकार के प्रयासों के साथ-साथ आमजन का सहयोग भी उतना ही आवश्यक है। इसकी शुरुआत प्रत्येक परिवार से होनी चाहिए। परिवार के सदस्यों को आपस में, विशेषकर बच्चों के साथ, हिंदी में संवाद करना चाहिए। विद्यालयी पाठ्यक्रमों में हिंदी भाषा और साहित्य को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए। साथ ही राजभाषा गोष्ठियों, वाद-विवाद, भाषण तथा निबंध लेखन प्रतियोगिताओं का नियमित आयोजन विद्यार्थियों में हिंदी के प्रति रुचि और आत्मीयता विकसित कर सकता है। बच्चों के बीच गुणवत्तापूर्ण हिंदी बाल-साहित्य को लोकप्रिय बनाने के प्रयास भी बच्चों को कम उम्र से ही हिंदी के प्रति रुचि पैदा कर सकता है।

इसके अतिरिक्त प्रतियोगी परीक्षाओं तथा उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाओं के बढ़ते प्रयोग से हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं को नई ऊर्जा मिल सकती है। इसी प्रकार सरकारी कार्यालयों में राजभाषा नीति का प्रभावी क्रियान्वयन तथा युवाओं में हिंदी लेखन, शोध और नवाचार के प्रति बढ़ती रुचि हिंदी के विकास को नई दिशा प्रदान कर सकती है। ऐसे सकारात्मक प्रयास हिंदी के प्रयोग, प्रतिष्ठा और स्वीकार्यता-तीनों को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अंततः यह स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना न केवल आवश्यक है, बल्कि स्वागत योग्य भी है। किंतु यह ज्ञान अपनी मातृभाषा अथवा राजभाषा की उपेक्षा करके प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए। जिस राष्ट्र के नागरिक अपनी भाषा पर गर्व करते हैं, वही राष्ट्र ज्ञान, संस्कृति और आत्मसम्मान के क्षेत्र में दीर्घकालिक उन्नति करता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम हिंदी को केवल राजभाषा के रूप में ही नहीं, बल्कि विचार, व्यवहार, शिक्षा, प्रशासन तथा ज्ञान-विज्ञान की एक सशक्त और सक्षम भाषा के रूप में भी स्वीकार करें।



हिंदी : दिलों की भाषा बने, तभी होगी सर्वप्रिय

भाषा को सम्मान आदेश से नहीं, अपनत्व से मिलता है

हमारा भारत भाषाओं का महासागर है। यहाँ हर सौ कि.मी. पर बोली बदल जाती है, लहजा बदल जाता है, शब्द बदल जाते हैं; किंतु भाव नहीं बदलते। यही भारत की सबसे बड़ी शक्ति और विशेषता है। इस विविधता के बीच हिंदी करोड़ों लोगों के संवाद का माध्यम है। यह हमारी राजभाषा है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या केवल राजभाषा होना ही पर्याप्त है? क्या किसी भाषा का सम्मान केवल संविधान में लिख देने से बढ़ जाता है?

उत्तर है-नहीं।

भाषा का वास्तविक सम्मान तब होता है, जब लोग उसे अपने मन से अपनाते हैं। जब वह घर की हँसी, मित्रों की बातचीत, साहित्य की संवेदना, विज्ञान की जिज्ञासा और भविष्य के सपनों की भाषा बन जाती है। इसलिए आज सबसे बड़ा प्रश्न यह नहीं कि हिंदी का प्रचार कैसे हो, बल्कि यह है कि हिंदी लोगों के हृदय में अपना स्थायी स्थान कैसे बनाए?

मेरा मानना है कि हिंदी को विषय नहीं, अनुभव बनाना होगा

हमारे विद्यालयों में हिंदी अक्सर व्याकरण, प्रश्नोत्तर और परीक्षा तक सीमित रह जाती है। विद्यार्थी भाषा को अंक प्राप्त करने का माध्यम समझते हैं, आनंद का नहीं। यदि कक्षा में कविता केवल रटवाई जाएगी, कहानी केवल समझाई जाएगी और नाटक केवल पुस्तक में रह जाएगा, तो भाषा बोझ लगने लगेगी।

कल्पना कीजिए-यदि बच्चे विद्यालय में कबीर, रहीम, महादेवी वर्मा और हरिवंश राय बच्चन को अभिनय के माध्यम से सीखें; यदि प्रेमचंद की कहानियाँ नाटक बन जाएँ; यदि हिंदी दिवस पर भाषण के स्थान पर कविता महोत्सव, कहानी उत्सव और हास्य सम्मेलन, नाटक, अभिनय के मंचन का आयोजन हों-तो क्या

हिंदी उबाऊ लगेगी? निश्चित ही नहीं। क्योंकि भाषा तभी जीवित रहती है, जब वह मुस्कुराती है। हिंदी का भविष्य मोबाइल की स्क्रीन पर भी है।

आज का युवा
पुस्तकालय से
अधिक समय

मोबाइल पर बिताता है। यदि हिंदी केवल पुस्तक तक सीमित रही और इंटरनेट पर उसका संसार सीमित रहा, तो नई पीढ़ी उससे दूर होती जाएगी। हमें ऐसी हिंदी चाहिए जो पॉडकास्ट में, ब्लॉग में, वेब सीरीज में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई AI) में, विज्ञान के शोधपत्रों में, स्टार्टअप की दुनिया में और डिजिटल उद्यमिता में ज्यादा से ज्यादा हो। जब तकनीक हिंदी में सहज होगी, तब हिंदी आधुनिक भारत की भाषा बनकर उभरेगी। आज आवश्यकता यह नहीं कि युवा तकनीक छोड़कर हिंदी अपनाएँ, बल्कि यह है कि तकनीक स्वयं हिंदी बोलने लगे।

कठिन शब्द नहीं, सरल संवाद : भाषा का सौंदर्य उसकी सरलता में होता है। कई बार हिंदी को इतना संस्कृतनिष्ठ बना दिया जाता है कि सामान्य व्यक्ति उससे दूर हो जाता है। दूसरी ओर, अत्यधिक विदेशी शब्दों का प्रयोग भी भाषा की आत्मा को कमजोर करता है। हमें ऐसी हिंदी चाहिए जो न अत्यधिक कठिन हो, न कृत्रिम। ऐसी हिंदी जो गाँव के किसान, शहर के विद्यार्थी, वैज्ञानिक, व्यापारी और कलाकार-सभी सहजता से समझ सकें। सरल भाषा ही सबसे अधिक प्रभावशाली होती है।



मो. साबिर अली हसन सिद्दीकी

सहायक निदेशक, राजभाषा,
रेलवे बोर्ड



साहित्य से समाज तक

जिस समाज का साहित्य जीवित रहता है, उसकी भाषा भी जीवित रहती है। हिंदी का साहित्य केवल पुस्तकालयों की अलमारियों में नहीं, बल्कि लोगों के जीवन में पहुँचना चाहिए। आज आवश्यकता है कि प्रेमचंद, निराला, दिनकर, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, हरिशंकर परसाई और समकालीन लेखकों की रचनाएँ नए माध्यमों में प्रस्तुत हों—ऑडियोबुक, ग्राफिक उपन्यास, एनीमेशन, वेब कॉमिक्स और डिजिटल मंचों पर। जब साहित्य आधुनिक माध्यमों से जुड़ेगा, तब युवा उससे स्वाभाविक रूप से जुड़ेंगे।

भाषा का प्रचार नहीं, प्रतिष्ठा बढ़ाएँ

किसी भाषा को महान घोषित कर देने से वह महान नहीं हो जाती। उसका गौरव उसके ज्ञान, साहित्य, विज्ञान, व्यवहार और उपयोगिता से बढ़ता है। यदि न्यायालयों, अस्पतालों, सरकारी कार्यालयों, विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक संस्थानों में उच्च गुणवत्ता का हिंदी लेखन और संवाद उपलब्ध होगा, तो लोगों का विश्वास अपने-आप बढ़ेगा क्योंकि भाषा का सम्मान उसके उपयोग से पैदा होता है।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ—प्रतिद्वंद्वी नहीं, सहयात्री

यह भूलना नहीं चाहिए कि भारत की हर भाषा

भारत की आत्मा का एक स्वर है। हिंदी का विकास तभी सार्थक होगा जब वह तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बंगाली, मराठी, पंजाबी, गुजराती, उड़िया, असमिया, कश्मीरी, संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सम्मानपूर्वक चले। जो व्यक्ति अपनी मातृभाषा का सम्मान करता है, वह हिंदी का भी सम्मान करेगा। भाषाओं के बीच प्रतियोगिता नहीं, सहयोग होना चाहिए। भारत की भाषाएँ एक बगीचे के विभिन्न फूल हैं; किसी एक फूल की सुगंध बढ़ाने के लिए दूसरे फूल को मुरझाने नहीं देना चाहिए।

परिवार : हिंदी का पहला विद्यालय

बच्चा सबसे पहले अपनी माँ की गोद में भाषा सीखता है। यदि परिवार में हिंदी में कहानियाँ सुनाई जाएँ, पुस्तकें पढ़ी जाएँ, कविताएँ गुनगुनाई जाएँ और संवाद आत्मीयता से हो, तो भाषा के प्रति प्रेम स्वाभाविक रूप से विकसित होता है। हिंदी केवल विद्यालय की नहीं, घर की भी भाषा बने—यही उसकी सबसे

बड़ी शक्ति होगी।

युवाओं को अवसर दीजिए

यदि हिंदी में उत्कृष्ट पत्रकारिता, फिल्म लेखन, अनुवाद, तकनीकी लेखन, कंटेंट क्रिएशन, डिजिटल मार्केटिंग, शोध, प्रशासन और उद्यमिता के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होंगे, तो युवा इसे केवल संस्कृति नहीं, अपने भविष्य से भी जोड़ेंगे। भाषा तब फलती-फूलती





है, जब वह रोजगार, नवाचार और सृजन से जुड़ती है।

विश्व मंच पर हिंदी

आज हिंदी विश्व के अनेक देशों में बोली और समझी जाती है। प्रवासी भारतीयों, डिजिटल माध्यमों और वैश्विक सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने इसके विस्तार की नई संभावनाएँ खोली हैं। यदि उच्च शिक्षा, विज्ञान, साहित्य और तकनीक की श्रेष्ठ सामग्री हिंदी में विकसित की जाए और विश्व तक पहुँचाई जाए, तो हिंदी केवल भारत की नहीं, विश्व की प्रभावशाली भाषाओं में अपना स्थान और सुदृढ़ कर सकती है।

निष्कर्ष : हिंदी को प्रेम चाहिए, प्रचार नहीं

हिंदी को सर्वप्रिय बनाने का सबसे सरल सूत्र है—उसे लोगों के जीवन से जोड़ दीजिए। उसे आधुनिक बनाइए, सरल बनाइए, उपयोगी बनाइए, सृजनशील बनाइए और सबसे बढ़कर उसे प्रेम की भाषा बनाए रखिए। किसी भाषा का भविष्य कानून नहीं लिखता, उसके बोलने वाले लोग लिखते हैं। यदि प्रत्येक भारतीय अपनी मातृभाषा का सम्मान करते हुए हिंदी को भी आत्मीयता से अपनाए, तो हिंदी का विस्तार स्वाभाविक होगा। वह किसी पर थोपी हुई भाषा नहीं, बल्कि दिलों को जोड़ने वाली भाषा बनेगी।

“आइए, हम ऐसी हिंदी का निर्माण करें जो ज्ञान में समृद्ध हो, विज्ञान में समर्थ हो, तकनीक में सक्षम हो, साहित्य में संवेदनशील हो और मानवीय रिश्तों में आत्मीय हो।”

जिस दिन हिंदी केवल ‘राजभाषा’ नहीं, बल्कि ‘जन-जन की प्रिय भाषा’ बन जाएगी, उसी दिन उसका वास्तविक उत्थान, प्रचार और प्रसार होगा।

“भाषा वही अमर होती है, जो मनुष्य के मन में घर बना ले। हिंदी के लिए भी सबसे सुंदर मार्ग यही है—दिलों तक पहुँचना।”

क्या चाहिए ?



डॉ. प्रदीप कुमार

सहायक आचार्य (अंग्रेजी),

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

खुशहाल जिन्दगी बिताने के लिए, शहंशाह बन जाने के लिए, दुनिया में नाम कमाने के लिए, बोलो क्या चाहिए?

सुंदर-सा जहाँ बनाने के लिए, वादियों में फूल खिलाने के लिए, संसार को स्वर्ग बनाने के लिए, बोलो क्या चाहिए?

दोस्त बनाने के लिए, प्यार जताने के लिए, दुश्मनी निभाने के लिए, बोलो क्या चाहिए?

महबूब बन जाने के लिए, यादों को भुलाने के लिए, सुकून थोड़ा-सा पाने के लिए, बोलो क्या चाहिए?

सिकंदर बन जाने के लिए, ठोकर से खुद को बचाने के लिए, आसमान से जमीन पर लाने के लिए, बोलो क्या चाहिए?

इन सब पहेलियों को सुलझाने के लिए, चाणक्य बन जाने के लिए, सारे राज बताने के लिए, बोलो क्या चाहिए?



देवनागरी के साथ भाषाई भारत-भ्रमण

(अनुवादक की नजर से)

अनुवाद कर्म आसान नहीं है। अनुवादक को भाषाओं के सागर में डूबना-उतराना और शब्द संसार में गोता लगाकर मोती चुनना होता है। जब कोई अनुवाद करता है तो वह विषय वस्तु को ओढ़ता-बिछाता है और उस पर अपनी क्षमताओं का ओठगन (अवलंबन) लगाता है। वह भाषा के शब्दों, क्रियाओं, व्याकरण एवं बहुत हद तक वर्तनी से भी खेलता है। अनुवाद करते समय वह कभी देशी बनता है कभी विदेशी, कभी शहरी बनता है तो कभी गाँवई मनई होता है। विचारों, भावनाओं, लोकोक्तियों और मुहावरों, सूक्तियों और सांस्कृतिक विभेदों से लड़ते हुए वह कभी-कभी इत्तेफाक से 'खुदा' को 'जुदा' और 'राम' को 'रम' में भी बदल देता है अर्थात् भयंकर गलतियाँ भी कर बैठता है। बड़ी रोचक है उसकी दुनिया। वह शिकायत नहीं सिद्धांत गढ़ता है और स्वयं को अद्यतन करता रहता है।

अनुवादक भी सृजन करता है और भाषाई सामंजस्य भी बिठाता है। जैसा कि हम जानते हैं 'चिंतन के स्तर पर अनुवाद एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है तथा लेखन के स्तर पर यह एक रचनात्मक विधा है।' अनुवाद कर्म उस समय बहुत ही जटिल हो जाता है जब लक्ष्य अथवा स्रोत भाषा के समानार्थी शब्द उसे नहीं मिलते। फिर भी उसे अनुवाद करते हुए आगे जाना होता है। उसे शब्द गढ़ना होता है। और वह भी उस तरह के शब्द गढ़ना होता है, जो उसके लक्षित समाज के लिए उपयुक्त हो अथवा उसे भाता हो। वह भाषाई द्वंद्व का सुख और दुख दोनों सहते हुए आगे बढ़ता है और अपने अनुवाद कर्म से समाजोपयोगी तत्वों को ही समाज को परोसता है।

भारत के भाषाई परिवेश में तथाकथित कुछ विदेशी (शक, हूण, कुषाण, तुर्क, अरबी, फारसी, मंगोल, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और उसमें समाहित

अन्य भाषाएं) शब्दों की भरमार है: यथा - नानक : यूनानी, कचहरी : पुर्तगाली, साबुन : फारसी, तश्तरी : फारसी, चिलम : अरबी, की तरह ही बोतल, बॉटल, हुक्का, चाय, टी, मजदूर, वकील, गुलाब, रसद, कारीगर, मिस्त्री आदि सभी विदेशी शब्द हैं। इन शब्दों का प्रयोग अनुवादक यह जानते हुए भी करता है कि ये विदेशी

हैं, क्योंकि वह अपने पाठक के समझने की प्रक्रिया को आसान बनाना चाहता है। इसलिए प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग करना श्रेयस्कर समझता है। जैसा कि जब समाज के पटल पर 'कंप्यूटर' (शब्द) आया तो 'कंप्यूटर' (मशीन अथवा डिवाइस) की कार्य पद्धति को समझते हुए भारतीयता अथवा स्वदेशी का बाह्य आवरण ओढ़े हुए अनुवादकों ने उसका अनुवाद 'संगणक' और 'परिगणक' के रूप में किया। लेकिन भारतीय समाज को तो 'कंप्यूटर' शब्द ही अच्छा लगा और यह 'कंप्यूटर' शब्द भारतीयता के पाग में पग गया। आज गाँव का अनपढ़ आदमी भी 'कंप्यूटर' को 'कंप्यूटर' ही कहना चाहता है, भले ही वह उसका उच्चारण 'कंपूटर' करता हो, वह 'संगणक' अथवा 'परिगणक' नहीं कहता। इसी प्रकार जब 'मोबाइल' का प्रादुर्भाव हुआ तो कुछ 'कट्टर हिंदी प्रेमियों' ने इसे 'चलभाष' या 'बातपेटी' लिखना शुरू किया। लेकिन थक हार कर उन्हें भी 'मोबाइल' शब्द को स्वीकार करना पड़ा। कहने का मतलब यह है कि विदेशी दुल्हनिया को 'साड़ी' अथवा



डॉ. गोपाल

वरिष्ठ प्रशासन सहायक,
राजभाषा एवं मानव संसाधन,
राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड,
विशाखपट्टणम



‘सूट-सलवार’ जैसे भारतीय परिधान कुछ देर के लिए ही आकर्षक लगते हैं। कमोबेश यही हाल कट्टर हिंदी प्रेमियों द्वारा गढ़े शब्दों के साथ भी होता है।

अनुवादकों विशेषकर भारतीय अनुवादकों ने हिंदी भाषा और उसकी लिपि ‘देवनागरी’ को बहुत सहयोग दिया है। शब्दार्थ के स्तर पर अनुवादकों का कर्म विभेद को मिटाकर नवसृजन के माध्यम से भाषाई आवश्यकताओं को पूरा करना होता है, जिसे कुछ हद तक भारतीय अनुवादकों ने किया भी है। जैसे कि कुछ विदेशी भाषाओं की ध्वनियों के उच्चारण व लेखन में देखा जाता है। जैसे : नुक्ता का प्रयोग करते अथवा न करते हुए : जलील, खान, गालिब, गजल आदि

शब्दों को धड़ल्ले से अपनाया जाने लगा है। हालाँकि वर्तनी के स्तर पर इसे उचित कतरई नहीं ठहराया जा सकता है, फिर भी भाषाई नुक्ता-चीनी से बचते हुए समाज में ऐसे शब्दों की स्वीकार्यता बढ़ी है। इसी सरलीकरण प्रक्रिया के तहत

अरबी और फारसी के शब्दों को क्रिया रूप देकर बड़े ही बारीकी से उनका हिंदीकरण कर लिया गया है, जैसे शर्म - शरमाना, फरमान - फरमाना, कबूल - कबूलना, बदल - बदलना, बख्श - बख्शाना आदि।

इतना ही नहीं, अरबी-फारसी के शब्दों के साथ क्रियाएं लगाकर उन्हें हिंदीकरण अथवा देवनागरीकरण का ऐसा जामा पहनाया गया है कि वे कभी वापस अरबी-फारसी में जा भी नहीं सकते। उदाहरण देखिए, खुश होना, दुआएं देना, दिल लगाना, दफा होना, जखम पहुँचाना, इलाज करना आदि। हिंदीकरण के मामले में अनुवादकों ने अरबी-फारसी के मूल शब्दों

के साथ छेड़छाड़ करके उनका भारतीयकरण करते हुए उनके संकर शब्द बना डाले हैं, जैसे: पानदान, पीकदान, हाथीवान, गाड़ीवान, समझदार, नामदार, कामदार आदि।

अरबी-फारसी के शब्दों का हिंदीकरण करने के लिए अनुवादकों ने न केवल शब्दों को बदला है बल्कि उनके प्रायोगिक स्वरूप को भी बदलकर उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार ढाला है। उदाहरण के लिए देखिए : मेवा-मेवों-मेवात, निशान-निशानों-निशानात, मजदूर-मजदूरों-मजदूरान, शहर-शहरों-शहरात, कस्बा-कस्बों-कसबात आदि।



अभी तक तो हम अरबी-फारसी के शब्दों का हाल देख रहे थे। अब कुछ पाश्चात्य देशों से आए शब्दों के हालात का भी जायजा लिया जाए। पाश्चात्य देशों ने जो वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति की है, उससे पूरी दुनिया प्रभावित हुई है। उन आविष्कारों

के बाजारीकरण के फलस्वरूप वे भारत में भी आए और यहाँ आकर अनुवादकों की कृपा से अब भारतीयता के रंग में रंग गए हैं। जैसे इन शब्दों को देखिए कहीं से भी विदेशी नहीं लगेंगे, यथा : रेल-रेलों, ट्रेन-ट्रेनों, तार-तारों, डाक-डाकों, मोटर-मोटरो, लालटेन-लालटेनों, लैंप-लैंपों, कार-कारों, प्लाट-प्लाटों, ऑफिसर-ऑफिसरों इत्यादि।

अनुवादकों के कौशल का प्रभाव आम बोलचाल की भाषा से लेकर वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों पर भी पड़ा है। वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों में अपना भाषाई प्रत्यय जोड़कर उन्हें पूरी तरह से भारतीय



बना दिया है। जैसे 'इत्र' प्रत्यय जोड़कर 'जनरेटर' को 'जनित्र', 'कंडेंसर' को 'संघनित्र' बना दिया और 'मापी' प्रत्यय जोड़कर 'थर्मामीटर' को 'तापमापी' और 'स्पीडोमीटर' को 'गतिमापी' बना दिया। इसी प्रकार प्रक्रियाओं के बोध के लिए पाश्चात्य देशों की भाषाओं के शब्दों का भारतीयकरण किया गया है। जैसा कि 'ऑक्सीजनाइजेशन' का 'ऑक्सीकरण', 'आयनाइजेशन' का 'आयनीकरण' कर दिया गया।

अनुवादकों ने अपने अनुवाद कर्म के खातिर शब्दों का सरलीकरण करते हुए परस्पर भाषाओं के शब्द भंडार का आदान-प्रदान भी खूब किया है। हमारे संस्कार, संस्कृति, आचार-व्यवहार आदि से जुड़े अनेक शब्द अब विदेशी भाषाओं के शब्दकोशों की शोभा बढ़ा रहे हैं। हर भाषा का अनुवादक अपनी भाषा को समृद्ध बनाने की कोशिश करता है और उसी क्रम में नए-नए शब्दों का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए 'Mill' शब्द को लेते हैं। पहले 'Mill' शब्द 'कारखाना' के रूप में प्रचलित हुआ। बाद में यह शब्द 'चक्की' के अर्थ में

रूढ़ हुआ। लेकिन वैज्ञानिक आविष्कार कर्ताओं ने अलग-अलग तरह के मिल बनाकर अनुवादकों के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर दी। इससे अनुवादक को भी कुछ तरकीब निकालने के लिए प्रयास करना पड़ा। अनुवादकों ने 'चक्की' शब्द की आड़ में आने वाले आविष्कारों का नामकरण करना शुरू किया, जैसे - Mill - चक्की, Floor mill-आटा चक्की, Oil Mill-घनचक्की, Wind Mill-पवन चक्की, Spinning Mill-कताई मिल, Bar Mill-सरिया/बार मिल, Structural Mill-संरचना/स्ट्रक्चरल मिल आदि।

अनुवादकों की यह खूबी अपनी भाषा तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि इस खूबी का उपयोग अंग्रेजी भाषा के अनुवादकों ने भी किया है। उदाहरण के लिए 'Green' शब्द से बने शब्द-युग्मों को देखिए Green Eyed- ईर्ष्यालु, Green Grocer- कुजड़ा या सब्जी विक्रेता, Green Proof-कच्चा प्रूफ, Green Hand-अनाड़ी, Green Horn-भोला, Green House-पौध घर, Green Room-सज्जागृह, Green Front-नया मोर्चा, Green Copy-पहली मशीन प्रति, Green Fingers-होशियार आदि।

भारतीय अनुवादकों की कुछ समस्याएँ भी हैं जो मूलतः भारतीय भाषाओं के 'शब्दों के अर्थ' एवं उन्हें बोलने वालों की 'उच्चारण' शैली से शब्दों से जनित हैं, उन पर विचार करना बहुत जरूरी है। पहले शब्दों के अर्थ को लेते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, बहुत से संस्कृतनिष्ठ शब्द जो अन्य भारतीय भाषाओं में प्रयोग में तो आते हैं पर उनके अर्थ में भिन्नता होती है। उन शब्दों के अनुवाद में कई बार गलतियाँ हो जाती हैं। जब हम दक्षिण भारत की

भाषाओं के शब्दों को देखते हैं तो यह भिन्नता बहुत जटिल प्रतीत होती है। जैसे कि तेलुगु भाषा में 'प्रपंच' का अर्थ 'संसार', होता है, जबकि हिंदी में 'संसार' का अर्थ 'विश्व अथवा घर-परिवार' होता है। इसी प्रकार तेलुगु में 'अत्याचार' का अर्थ 'बलात्कार', और 'अवसर' का अर्थ 'आवश्यकता' होता है। इस तरह के अनेक शब्द हैं जो अनुवादक अथवा स्रोत को भ्रमित करते हैं। यह अर्थ भिन्नता की समस्या केवल हिंदी और दक्षिण भारत की भाषाओं (मूलतः तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम) में ही नहीं है। बल्कि





परस्पर दक्षिण की भाषाओं के शब्दों के अर्थ में भी है। जैसा कि आपने देखा तेलुगु में 'अवसर' का अर्थ 'आवश्यकता' है। लेकिन कन्नड़ में उसी 'अवसर' का अर्थ 'शीघ्र' होता है।

जब हम तमिल की भाषा के शब्दों पर विचार करते हैं तो लेखन-भिन्नता के साथ-साथ उच्चारण भिन्नता में भारी अंतर मिलता है। जैसे कि तमिल में 'ख' वर्ण नहीं होने के कारण 'काना' उच्चारित करके 'काना, खाना, और गाना' तीनों अर्थ निकाले जाते हैं। इसी प्रकार 'पत्तर' उच्चारित करके 'पत्थर' और 'पत्र' दोनों अर्थ निकाले जाते हैं। लेखन के स्तर पर भी बहुत भ्रम होता है। 'अखिल' लिखने के लिए 'अहिल' और 'शांति' के लिए 'शांदि' लिखा जाता है। मजा तो तब आता है जब कोई तमिल भाषी की उच्चारण ध्वनि के अनुसार शब्दों को लिखा जाता है। वह 'शांदि' के लिए हिंदी में 'शांति' लिखवाना चाहता है। या फिर वह 'दिक्षिता' के लिए 'थिक्शिथा' लिखता है और आपसे 'दिक्षिता' लिखवाता है।

मलयालम के शब्दों में कुछ शब्दों के उच्चारण और उनके अर्थ को देखें तो जटिलता का पता चलेगा, यथा: पाति - आधा (हिंदी में पत्र, पत्ती), अरि - चावल (हिंदी में शत्रु), मल - पहाड़ (हिंदी में विष्टा या गंदगी), कलम - मिट्टी की हांडी (हिंदी में लेखनी), तालम - ताल (हिंदी में ताल का अर्थ तालाब, ताल, तलैया), तालि - मंगलसूत्र (हिंदी में ताली का अर्थ चाबी, ताली बजाना) होता है। इसी प्रकार कन्नड़ में भी शब्दों के उच्चारण और अर्थ में अंतर मिलता है। जैसा कि उदाहरण में देखा जा सकता है: अवसर - शीघ्र (मौका, समय), उपहार - नाश्ता (भेंट देना), चेष्टा - मजाक (कोशिश करना), शिक्षा - सजा देना (ज्ञान), बाल - पूँछ (केश), प्रपंच - परिवार (कूटनीति), मर - पेड़ (मृत्यु), कर - बछड़ा (करना, हाथ, टैक्स आदि) होता है।

आइए अब, उच्चारण भिन्नता के मामले पर विचार करते हैं। उच्चारण भिन्नता के कारण हिंदी भाषा की

वर्तनी में कई बार हास्यास्पद स्थिति भी देखने के लिए मिल जाती है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और उसके आस-पास के लोग प्रायः 'गृहणी' की जगह 'ग्रहणी' और 'गृहमंत्री' की जगह 'ग्रहमंत्री' का उच्चारण करते हैं। कभी-कभी तो ऐसी त्रुटियाँ लेखन में भी मिलती हैं। इसी प्रकार पंजाब के लोग 'हाँ जी' के लिए 'हाँजी.. हांजी', हरियाणा के लोग रहने दें को इलए 'रेअड़ दे, और कौन सा के लिए 'कोण सा' चेक के लिए 'चौक' और सेट के लिए 'सैट' का उच्चारण करते हैं और कभी-कभी लिखते भी हैं।

ऐसे ही आंध्र प्रदेश के लोग 'सत्य' (सत्यनारायण) की जगह 'सच' (सचनारायण) का उच्चारण करते हैं, जिसका अर्थ 'मरना' होता है। केरल के लोग थॉमस को 'तोमस' और गोपाल को 'गोवाल' कहते हैं। बंगाली भाषियों के तो क्या कहने, उनके भोजन और भजन दोनों में अंतर ही नहीं लगता। वे 'अर्पिता' को 'ओर्पिता', और 'मजा' को 'मोजा' कहते हैं। बिहार और पूर्वांचल की बात यदि इस लेख में न हो तो बात अधूरी रहेगी और शिकायत दूर तक जाएगी, अतः उस हिंदी भाषी क्षेत्र (भोजपुरी, मागधी और मैथिली भाषी) की चर्चा आवश्यक है। बहुत से लोग 'डॉक्टर' शब्द के लिए 'डागडर', 'सड़क' के लिए 'सरक', घोड़ा के लिए 'घोरा', 'घर' के लिए 'घड़', 'दुआर' को लिए 'दुआड़' आदि का उच्चारण करते हैं।

अंततः, इस भाषाई भारत भ्रमण का एक मात्र उद्देश्य यह है कि लेखन और उच्चारण के स्तर पर भ्रांति पैदा करने वाली जो त्रुटियाँ हैं उन्हें दूर करने अथवा उनके समाधान के लिए सहमति के साथ समग्र प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे हिंदी भाषा तथा उसके प्रयोग में और अधिक समरूपता आनी चाहिए। ताकि अनुवादकों को अनुवाद कर्म के लिए सहूलियत हो सके और साथ ही भारत के भाषाई सौहार्द में बढ़ोत्तरी भी।



हिंदी

भाषा रही वही जीवित जो
सुस्पष्ट प्रयोग सुलभ हो।
संप्रेषण सरल हो जिसका
अर्थ नहीं जिसके दुर्लभ हों॥

हिंदी नहीं केवल एक भाषा
सामान्य मानवी की आशा है।
विकास यात्रा की सहगामी
यह भारत की परिभाषा है॥

स्वतंत्रता के संघर्ष काल में
बनी आम और खास की भाषा।
भारत के उज्ज्वल भविष्य की
गौरवपूर्ण इतिहास की भाषा॥

हिंदू, मोमिन, सिक्ख, ईसाई
बौद्ध, जैन के प्राण की भाषा।
एक सूत्र में देश को बाँधे
भारत के पहचान की भाषा॥

जितना वैज्ञानिक, उतना सहज
सरल, सुगम, संचार की भाषा।
दिव्य संस्कृति की रही संरक्षक
ये सभ्यता के प्रचार की भाषा॥

नहीं केवल अनुवाद की ये तो
है अपने संवाद की भाषा।
जीवन मूल्यों की संवाहक
भारत जिंदाबाद की भाषा॥

गर्व के अवसर देने वाली
शब्दों के निस्तार की भाषा।
अभिव्यक्ति शक्ति के आगे
भावों के विस्तार की भाषा॥

खुशियों में उल्लास के क्षण में
दीपोत्सव, प्रकाश की भाषा।
दुःख, विषाद के कठिन घड़ी में
स्नेहलेप, विश्वास की भाषा॥

क्षण में है ये ओज की भाषा
क्षण में मौलिक सोच की
भाषा।

क्षण में ही विद्रोह की भाषा
है भावों में लोच की भाषा॥
है कर्णप्रिय, कितनी मनभावन,
सबसे अलग संसार की भाषा।
बसुधैव कुटुम्बकम् के धरती
की है
प्रेम-भाव प्रसार की भाषा॥
थाह नहीं इसके सीमा की,
विश्वकोष की वैश्विक भाषा।
लोकतंत्र को पुष्ट करे जो,
है मौलिक, स्वभाविक भाषा॥

सर्वग्राही, शब्दावलियों की,
सार्वभौम समावेशी भाषा।
हवा में, हर रजकण में फैली,
प्रवासी, परदेस की भाषा॥

है अपने व्यापार की भाषा,
सुंदरतम व्यवहार की भाषा।
अब ये, कारोबार से जुड़कर,
रोजगार, बाजार की भाषा॥

नये दौर में नया कलेवर,
माँग रही अपनी हिंदी।
विश्व पटल पर छाने को है,
भारत के माथे की बिंदी॥

राष्ट्रभाषा अंतिम लक्ष्य है,
उसमें तो अभी देरी है।
चौतरफा बढ़ना है इसको,
फिर, क्यों पावों में बेड़ी है?

भावनात्मक समर्थन ही नहीं,
व्यवहारिक बदलाव चाहिए।
है संकट के भीड़ में खड़ी,
उत्साहपूर्ण बर्ताव चाहिए॥



प्रिन्स कुमार
वरिष्ठ अनुवादक,
पू.म.रे./डीडीयू



हरिवंश राय बच्चन : जीवन एवं कृतित्व

हिंदी साहित्य के इतिहास में हमने कई काल खंड पढ़े हैं। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल इसके प्रमुख हिस्से हैं। किंतु उक्त चार काल खंडों में आधुनिक काल को विविध साहित्यकारों एवं विद्वानों ने कई छोटे-छोटे युगों एवं वाद में विभाजित किया है यथा भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि। इन सभी के अलावा भी एक काव्य विचारधारा “उत्तर-छायावाद” के समय देखने को मिली जिसका वर्णन हिंदी साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। हिंदी काव्य शास्त्र के इतिहास में 1930 का दशक एक बड़ा परिवर्तन लेकर आया। छायावाद की सूक्ष्म, कठिन और रहस्यवादी अभिव्यक्तियों के विपरीत एक नई काव्य-धारा का जन्म हुआ जिसे “हालावाद” कहा जाता है। हिंदी साहित्य में हालावाद का प्रवर्तक हरिवंश राय बच्चन को माना जाता है।

हरिवंश राय बच्चन हिंदी साहित्य के “उत्तर-छायावाद” काल के सबसे लोकप्रिय और युगप्रवर्तक कवियों में से एक हैं। उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के बाबूपट्टी गांव में जन्मे बच्चन जी ने अपनी सहज, संगीतात्मक और मर्मस्पर्शी काव्य-शैली से आम जनमानस के दिलों पर राज किया। प्रयागराज विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य (डब्ल्यू. बी. यीट्स पर शोध) में पीएचडी की उपाधि प्राप्त करने वाले बच्चन जी ने हिंदी कविता को क्लिष्टता के घेरे से निकालकर आम आदमी की भाषा और संवेदना से जोड़ा। बच्चन जी का सबसे बड़ा योगदान हिंदी

भाषा को जन-सामान्य के करीब लाना था। जिस दौर में अन्य कवि कठिन तत्सम शब्दों का प्रयोग कर रहे थे, बच्चन जी ने बोलचाल की सहज हिंदी और अवधी के मिठास भरे शब्दों में महाकाव्यात्मक गहराई पैदा की। वे केवल मूल रचनाकार ही नहीं थे; उन्होंने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटकों (मैकबेथ और हेमलेट) तथा उमर खय्याम की रुबाइयों का हिंदी में उत्कृष्ट अनुवाद भी किया।

हिंदी साहित्य के इतिहास में “हालावाद” का उदय प्रतीकात्मक सौंदर्य : “हालावाद” में “हाला” (मदिरा/शराब), “साकी” (पिलाने वाला), “प्याला” और “मधुशाला” (मदिरालय) शब्द केवल भौतिक अर्थों में नहीं, बल्कि जीवन के गूढ़ दर्शन के प्रतीक हैं। यहाँ “हाला” जीवन का आनंद और वेदना है, “प्याला” मानव मन है और “मधुशाला” यह संपूर्ण संसार है।

मदिरालय के द्वार ठोंकता किस्मत
का छूँछा प्याला,

गहरी, ठंडी सांसें भर भर कहता
था हर मतवाला,

कितनी थोड़ी सी यौवन की
हाला, हा, मैं पी पाया!

बंद हो गई कितनी जल्दी मेरी
जीवन मधुशाला।



अभिषेक कुमार प्रसाद

कनिष्ठ अनुवादक, पूर्व रेलवे,
सियालदह





व्यक्तिवादिता और मस्ती : हालावाद ने जीवन की अनिश्चितता, नश्वरता और दुखों को स्वीकार करते हुए वर्तमान क्षण को पूरी मस्ती और प्रेम से जीने का संदेश दिया। फारसी कवि उमर खय्याम की रुबाइयों का प्रभाव इस विचार पर स्पष्ट झलकता है।

नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नव गान
फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

सामाजिक समरसता पर बल : हालावाद की सबसे बड़ी देन धार्मिक कट्टरता और सामाजिक आडंबरों पर प्रहार था। बच्चन जी ने लिखा:

“बैर बढ़ाते मंदिर-मस्जिद, मेल कराती मधुशाला।”

यह पंक्ति धर्म और जाति के बंधनों से परे मानव प्रेम और भ्रातृभाव की मिसाल बनी।

मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, क्या भूलूँ क्या याद करूँ इत्यादि हरिवंश राय बच्चन की कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के माध्यम से कवि के विचारों एवं हालावाद के मूल तत्वों को जाना जा सकता है।

1. मधुशाला (1935) :- यह बच्चन जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध, कालजयी और युगांतकारी रचना है। इसमें चार-चार पंक्तियों की कुल 135 रुबाइयाँ हैं। “मधुशाला” में कवि ने मदिरालय के रूपक के माध्यम से मानव जीवन के विरोधाभासों, दुखों और निराशाओं को भूलकर जीवन को सहजता से जीने का रास्ता दिखाया है। इसकी भाषा में इतना अद्भुत प्रवाह और लय है कि यह प्रकाशित होते ही पूरे देश

में छा गई और इसे हिंदी कविता के इतिहास की सबसे प्रसिद्ध पुस्तकों में गिना जाने लगा।

मदिरालय जाने को घर से चलता है पीनेवाला,
“किस पथ से जाऊँ?” असमंजस में है
वह भोलाभाला,

अलग-अलग पथ बतलाते सब पर
मैं यह बतलाता हूँ -

“राह पकड़ तू एक चला चल,
पा जाएगा मधुशाला।”

2. मधुबाला (1936) :-

“मधुशाला” की अपार सफलता के बाद प्रकाशित “मधुबाला” उनकी हालावादी त्रयी का दूसरा पड़ाव है। इसमें कवि की भावनाएँ अधिक व्यक्तिगत, भावुक और सौंदर्यबोध से परिपूर्ण हैं। इसमें प्रेम के आनंद, समर्पण और विरह की वेदना को बेहद कोमल शब्दों में पिरोया गया है। यहाँ “मधुबाला” जीवन-रूपी रूपसी का प्रतीक बनकर उभरती है, जो पाठक को जीवन के वास्तविक आनंद की ओर आकर्षित करती है।

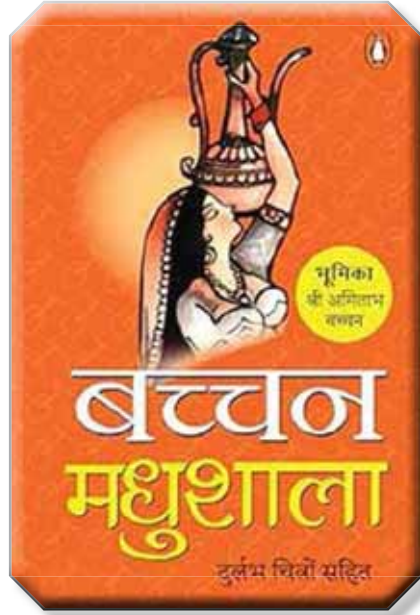
मैं मधुबाला मधुशाला की,
मैं मधुशाला की मधुबाला!

मैं मधु-विक्रेता को प्यारी,
मधु के घट मुझ पर बलिहारी,

प्यालों की मैं सुषमा सारी,
मेरा रुख देखा करती है

मधु-प्यासे नयनों की माला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

3. मधुकलश (1937) :- हालावादी काव्य-त्रयी की यह अंतिम कड़ी है। “मधुकलश” तक आते-आते कवि का हालावादी दृष्टिकोण केवल मस्ती तक सीमित न रहकर एक गंभीर जीवन-दर्शन का रूप ले





लेता है। इसमें मदिरा का रूपक थोड़ा पीछे छूटता है और सामाजिक विषमताओं, देशप्रेम, कर्तव्यबोध तथा यथार्थवादी चिन्ताओं को प्रमुखता मिलती है। इसमें निराशा के बीच आशा की किरण जगाने का संदेश निहित है।

रोता बादल की बूंदों में,
करती है व्यक्त धरा जीवन,
होकर तृणमय होकर उर्वर,
है आज भरा मेरा जीवन

है आज भरी मेरी गागर!

4. निशा निमंत्रण

(1938) :- अपनी पहली पत्नी श्यामा के असामयिक निधन के बाद गहन व्यक्तिगत शोक और एकाकीपन के दौर में बच्चन जी ने इस मार्मिक गीत-संग्रह की रचना की। इसमें छोटे-छोटे 13-13 पंक्तियों के 100 गीत शामिल हैं। रात्रि (निशा), नीड़, पक्षी और विरह के प्रतीकों के माध्यम से कवि ने समय के बीतने की गति और मनुष्य के जीवन की नश्वरता का अत्यंत कारुणिक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

जग के विस्तृत अंधकार में,
जीवन के शत-शत विचार में

हमें छोड़कर चली गई, लो,
दिन की मौन संगिनी छाया!

साथी, अन्त दिवस का आया!

5. क्या भूलूँ क्या याद करूँ (1969) :- यह बच्चन जी की चार खंडों में लिखी गई कालजयी आत्मकथा का पहला भाग है। इसके अन्य तीन भाग हैं - नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर और दश

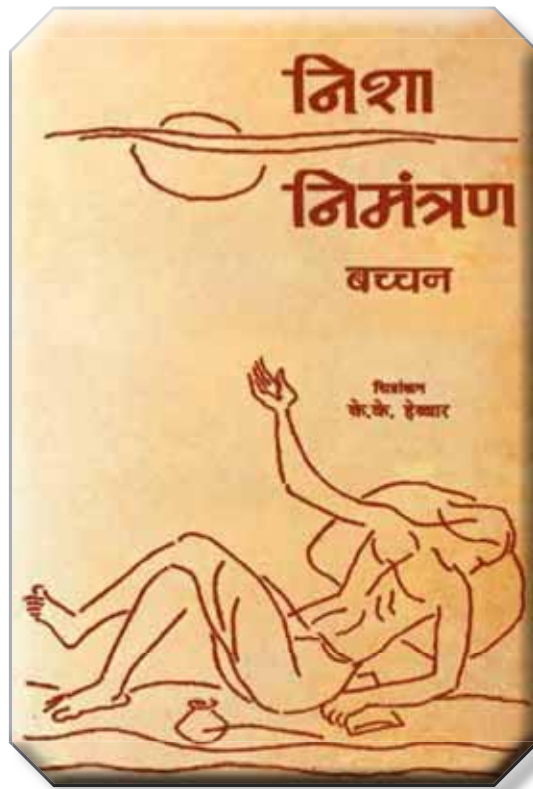
द्वार से सोपान तक। इस ग्रंथ में उन्होंने अपने पूर्वजों के इतिहास, अवध क्षेत्र के ग्रामीण जीवन, अपने बचपन और प्रारंभिक संघर्षों का ऐसा निष्पक्ष और बेबाक वर्णन किया है कि इसे हिंदी गद्य साहित्य का मील का पत्थर माना जाता है।

याद सुखों की आँसू लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूँ जब अपने से,
अपने दिन बर्बाद करूँ मैं!

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

डॉ. हजारि प्रसाद द्विवेदी ने इस आत्मकथा की तुलना विश्व-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाओं से की थी। अपने जीवन काल में हरिवंश राय बच्चन जी को अनगिनत पुरस्कारों एवं सम्मानों से नवाजा गया, जिनमें से वर्ष 1968 में उनकी प्रसिद्ध कविता संग्रह “दो चट्टानें” के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, वर्ष 1967 में उनकी कृति “चौंसठ रूसी कविताएँ” के लिए प्रतिष्ठित सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, हिंदी साहित्य और शिक्षा के

क्षेत्र में उनके अमूल्य योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1976 में पद्म भूषण और वर्ष 1991 में प्रथम सरस्वती सम्मान शामिल है। एक पाठक और साहित्य विद्यार्थी होने के नाते मेरा मानना है कि हरिवंश राय बच्चन जी केवल एक महान साहित्यकार ही नहीं, बल्कि जीवन को असीम उत्साह, संघर्ष और सकारात्मकता के साथ जीने की राह दिखाने वाले युगपुरुष थे।





जनरल डिब्बे की पाठशाला

कि या गया पक्ष-उसकी जरूरत से ज्यादा चौड़ी सीटें, मुझे लगा कि बताइए आजकल बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 'सोफा-कम-बेड' को अत्याधुनिक बताकर लाखों में बेच रही हैं और यहाँ रेलवे में वही 'सोफा-कम-बेड' संविधान के मौलिक कर्तव्यों की तरह महत्वहीन बना हुआ है! फिर मैंने अपने बैग से महात्मा गाँधी की "इंडिया आफ माई ड्रीम्स" निकाली और पन्ने पलटने लगा, अभी मेरे मन में ये बादल उठ ही रहे थे कि अब क्यों ट्रेन में वो पतली रंग बिरंगी किताबें बिकना बंद हो गई कि तभी पापा का फोन आ गया। "मजा आ रहा है? अब बात समझ आई, कितनी ठंडी होती है जनरल डिब्बे में!" पापा बोले, नेपथ्य में बहन की आवाज आई, "बहुत हीरो बन रहा था ना, अब दिमाग ठीक हो जाएगा"; एक



तो पूरी ईमानदारी से खिड़कियों के बंद होने से ठंड लग भी नहीं रही थी और दूसरी बात ये कि सामने जो मुझसे लगभग साढ़े तीन गुना उम्र के व्यक्ति थे उन्होंने घुटनों तक लटकी सूती धोती पहनी थी, अतः यहाँ ठंड की किसी भी गुँजाइश को नकारते हुए मैंने कहा, "नहीं! नहीं! सब ठीक है उतर कर बात करते हैं।" वैसे अगले ही क्षण वो वृद्ध महानुभाव गायब हो गए और जब लौटे तो उन्होंने धोती के नीचे एक ऊनी पैजामा पहन लिया था, ऊधर दूसरी तरफ किसी नए आगंतुक ने हम लोगों की परित्यक्त की हुई सीट की खिड़की अपनी गुटखे की तलब के लिए आधी खोल दी थी। धीरे धीरे डिब्बे के अंदर का

वातावरण बिगड़ने लगा और चारों ओर से आवाजें उठने लगी, फिर क्या! वापस संसदीय व्यवस्था के तहत ध्वनि मत से खिड़की बंद करने का प्रस्ताव पारित हो गया। हम दोनों लोग अब तक जनरल डिब्बे को दस में से आठ अंक तो दे चुके



अभिषेक कुमार सिंह

राज्य कर अधिकारी,
उत्तर प्रदेश सरकार

थे और बचे हुए दो अंकों के उत्तर को जाँचने का जज्बा हममें था ही नहीं, लेकिन मनुष्यता की सीमाओं में बँधे होने के कारण चार घंटे बाद हमें उन दो अंकों के लिए भी सज्ज होना पड़ा। बारी- बारी से

हमलोग शौचालय नामक ट्रेन की सबसे बदनाम जगह में गए और आने के बाद हमने जनरल डिब्बे को दस में से साढ़े नौ अंक दे ही दिए। इस चहलकदमी के दौरान मेरी नजरों को मैराथन का भी अवसर मिला, मैंने जब डिब्बे के अंतिम छोर तक देखा तो अनुभव किया कि अब ये वो मेरे बचपन के दिनों वाले संकरे डिब्बे नहीं हैं, अब इनकी चौड़ाई फिल्मों में दिखाई जाने वाली मुम्बई की लोकल ट्रेनों जितनी हो गई है, चमचमाते हैंडल भी छत से लटक रहे हैं और तो और जनरल डिब्बों में भी मोबाइल चार्जिंग के प्वाइंट मिल जा रहे हैं। अब बस दो स्टेशन-बछरावां और निगोहन बाकी थे और लगभग पैंतालीस मिनट



का इंतजार और फिर लखनऊ, पढ़ने की तलब अब कम हो गई थी, रोशनी भी मध्यम थी तो मैं लोगों की बातें सुनने लगा। ये यूरोप कि ट्रेनों जैसा खुद में सिमटा माहौल नहीं था, यहाँ तो समुद्र तल से लेकर ब्रह्माण्ड के उस पार तक घोड़े दौड़ाए जा रहे थे, ऐसा विविध और व्यापक 'ग्रुप डिस्कशन' शायद ही दुनिया का कोई भी प्रबंधन संस्थान आयोजित करवा पाता जो अनचाहे रूप से भारतीय रेल दशकों से संचालित करता आ रहा है। गौर से सुना तो पता चला कि मेरे सामने बैठे दोनों बुजुर्ग सोमनाथ की यात्रा से लौट रहे थे और उनको सीतापुर जाना था, मेरे सामने बैठा लड़का प्रयागराज के नैनी स्थित एक तकनीकी संस्थान में साक्षात्कार देकर आ रहा था; कैसी अभूतपूर्व जुगलबंदी थी! एकतरफ मृत्यु से पहले तीर्थाटन फलीभूत होने की संतुष्टि तो दूसरी ओर भविष्य को लेकर आशंकाएँ ही आशंकाएँ। मम्मी उस लड़के का मार्गदर्शन करने लगीं और मेरा ध्यान उन बुजुर्गों के शब्दों पर था, "बड़े बड़े नरेश नहीं कर पाएँ, हमहन के सोमनाथ बाबा क बुलावा रहल", अब चारबाग स्टेशन आ चुका था।

किसी महिला की खनकती आवाज गूँजी, "यात्रीगण! कृपया ध्यान दें, ट्रेन संख्या 14209 प्रयागराज-लखनऊ इंटरसिटी प्लैटफॉर्म संख्या दो पर आ चुकी है, धन्यवाद", इस आवाज से स्कूल का भौतिकी का एक पाठ याद आ गया, एक बार इंटरमीडिएट में ये बहस हो गई कि आखिर रेलवे स्टेशन की एनाउंसर हमेशा कोई महिला ही क्यों होती है? तमाम तर्क आए फिर हमारे भौतिकी के शिक्षक ने हमलोगों पर ग्लानि न्यूछावर करते हुए कहा, "जाओ देखो एकाउस्टिक्स का अध्याय, फिर समझो कि पुरुषों की आवाज का एम्प्लिट्यूड ज्यादा होता है और महिलाओं की आवाज की पिच, इसलिए महिला की आवाज में खनखनाहट होगी और स्पष्ट रूप से दूर तक सुनाई देगी, रेलवे सिर्फ इसलिए ही महा नारीवादी है क्योंकि उसको हर भाषा भाषी तक स्पष्ट संदेश प्रेषित करना है, समझो।" अब हम दोनों चारबाग स्टेशन पर आगे बढ़ रहे थे और यहाँ भी वैसी ही अतिशयोक्तियों से

भरे अनुभव हो रहे थे, मैंने आश्चर्य से ऊपर नीचे होते एस्केलेटर्स को देखा, फिर खुद से कहा, "ये हवाईअड्डा नहीं है, ये शापिंग माल भी नहीं है"; अब हम बाहर आ चुके थे, लेकिन फिर मैं कुछ सोचकर अंदर भागा, हाईटेक पूछताछ काउंटर पर बिना किसी तिरस्कार के भय के बेहिचक मैंने पूछा, "परसों कितने बजे इंटरसिटी प्रयागराज जाएगी?", उधर से आवाज आई, "सुबह सात बजे लेकिन एसी या स्लीपर में तत्काल का टिकट भी मुश्किल होगा", मैंने तपाक से प्रतिकार किया, "अरे! अंकल जो बात जनरल में है वो एसी वेसी में कहाँ!" मैं अब गर्वान्वित होकर इंतजार कर रहा था कि कैसे-कैसे और कब-कब मैं जनरल डिब्बे के कुलीन और अभिजात्य विरोधियों को आईना दिखाऊँगा; इंदिरा नगर के लिए आटो में बैठने के बाद भी मेरे जेहन में पिछले पाँच घंटों का एक-एक चित्र तैर रहा था, न तो वो कोई मेरी पहली यात्रा थी, न तो पहली हवाई यात्रा थी, ना कुछ बहुत अच्छा, बहुत बुरा, बहुत साहसिक या दुस्साहसिक ही घटा था, फिर ये संतुष्टि कैसी?

वो तो बस एक बहुत छोटा सा जनरल डिब्बे का सफर था लेकिन कहीं न कहीं मेरा अंतर्मन ये स्वीकार चुका था कि जो सामाजिक अनुभव मैंने आज लिए, जितने करीब से भारत की मिट्टी को मैंने आज चूमा, इतने कम समय में कोई और जरीया मुझे ये साक्षात्कार न करवा पाता।

अंत में मुझे प्रख्यात समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह की वो बात याद आ रही थी कि भारत की समस्याओं का समाधान और कुछ नहीं हमारी प्राचीन संस्कृति का आधुनिकीकरण ही है या दूसरे शब्दों में कहें तो अभिजात्य वर्ग का जनरल डिब्बे का स्वीकरण। और शायद आज अगर हेन सांग, फाह्यान या अलबरूनी भारत को जानने आते तो ये उनके लिए बड़ा आसान होता, देश के चारों छोरों से ट्रेन का टिकट लेकर जनरल डिब्बे में बैठकर हफ्ते दस दिन में वो भारत की आत्मा का दर्शन कर लेते।



पानी

पानी तू कितने रंग दिखाता है
 कभी थमा मदमस्त छलछलाता हुआ
 शांति में घुल जाता है
 तो कभी बहता हुआ बहार सा, बहार लाता है
 कभी तू रुका जो जर-जर सा
 चीख पुकार जीवन में सेंध लगाता है
 कभी तू ठहरा भ्रम जाल बनाता है
 तू गहराई का सत्य, बड़ी मासूमियत से छिपाता है
 कभी गिरती हुई बूंद का हश्र, सबक बन जाता है
 रंग के जीवन में तू इस कदर रंग भर जाता है
 वह तेरे पास आकर स्वयं को भूल जाता है
 तेरे हृदय की अथाह गहराई, न तू कभी दिखलाता है
 जीवन की अद्भुत रचना का जब अहसास ना हो
 तेरा उग्र स्वरूप, आँखों की सत्यता दिखलाता है



कभी बच्चे के लिए तू
 खेल बन जाता है
 तो कभी खेलते जीवन
 में बचपन सी नादानियाँ
 कर जाता है
 खुश-खिलते जीवन में
 तू खेल रचाता है
 कभी दो बूंद में लोगों
 की श्रद्धा बन जाता है
 तो कभी दो बूंद की
 कीमत का अहसास न करा पाता है



दीपक कुमार प्रजापत
 सहायक अनुभाग अधिकारी,
 रेलवे बोर्ड

बहता हुआ अनर्गल,
 तू ही तेरा उपहास उड़ाता है
 कभी गंगा सा पवित्र बन पवित्रता फैलाता है
 पापी के पाप को खुद अपना,
 उसे जीवन का अर्थ सिखाता है
 कभी बहता हुआ निश्छल सा,
 जीवन का छल दर्शाता है
 गिरता हुआ झरने सा,
 अपनी सांसों के मधुर स्वर से, प्रकृति दिखलाता है
 बदलते पात्रों के लेते हुए स्वरूप,
 तू परिवर्तन दिखलाता है
 इन स्वरूपों में तू,
 तेरे हृदय की एक सी निष्पछता लाता है
 तेरे हृदय की परछाई को ओढ़े जो नर
 चलता तेरी लहरों के सरगम में
 मोक्ष पार हो जाता है,
 पानी तू कितने रंग दिखाता है॥

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





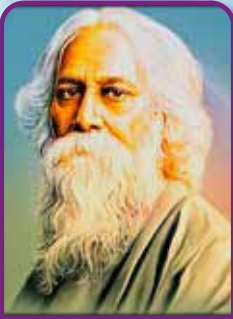
राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।

महात्मा गांधी



हिंदी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है, जिसे बिना भेद-भाव प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

मदन मोहन मालवीय



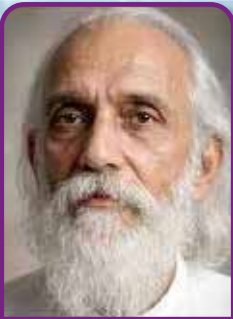
भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी।

रवींद्रनाथ ठाकुर



समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

जस्टिस कृष्णास्वामी अय्यर



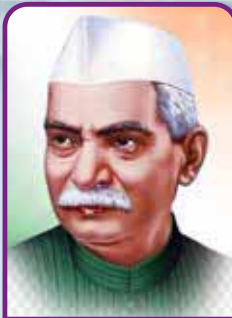
हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और उसे दृढ़ करती है।

पुरुषोत्तम दास टंडन



हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

स्वामी दयानंद सरस्वती



हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र स्वदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद



रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड), नई दिल्ली